स्व-गत

[श्री हरिभाऊ उपाध्याय]

स्व-गत

लेखक

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

प्रकाशक

सस्ता-साहित्य-मण्डल,

अजमेर ।

पहली बार २०००

मूल्य छः आना

सन् १९३१

मुद्रक
जीतमल लूणिया,
सस्ता साहित्य प्रेस, अजमेर ।

कुछ शब्द

'सस्ता-साहित्य-मण्डल' मेरे 'स्वगतों' को पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर रहा है। ये 'स्वगत' जब समय-समय पर 'मालव-मयूर' व 'त्यागभूमि' में छपते रहे हैं, तब मेरा यह ख़याल था कि इनके द्वारा पाठकों की अच्छी सेवा होती होगी। परन्तु ये स्वगत तो मनके विचार, मन की तरंगें है। अच्छे और अनूठे विचार कोई भी विचार-शील मनुष्य पाठकों को दे सकता है। परन्तु उन विचारों का मूल्य तभी बढ़ सकता है और उनका स्थायी असर पाठकों के चित्त पर तभी पड़ सकता है, जब उनके पीछे जीवन और आचरण का बल हो। पिछले दस महीने के जेल-जीवन में मुझे गहराई के साथ आत्म-विचार का अवसर मिला, जो कि बाहर, सतत कार्य-लीनता के कारण, न मिल सका था। मैंने अपनी सूक्ष्म मनः-प्रवृत्तियों को जाँचने की और उनपर ध्यान रखने की कोशिश

की है, अपने विचारों और आचारों को तौला है, अपने आदर्शों और अपनी दुर्बलताओं पर विचार किया है, और उसके फलस्वरूप अपने को खोखला पाया है। ऐसी दशा में सहज ही इन स्वगतों का मूल्य मेरी दृष्टि में कम हो जाता है। इतने पर भी यदि पाठकों को इनसे लाभ पहुँचा, तो यह उनकी सज्जनता और गुण-ग्राहकता का ही प्रमाण होगा।

गाँधी-आश्रम,
हटूँडी।
चैत्र शुक्ला ५ सं० १९८८

हरिभाऊ उपाध्याय

स्व-गत

जब मैं अपने गुण और दूसरों के दोष देखता हूँ तब मालूम होता है, मैं यदि कोई महात्मा नहीं तो साधु पुरुष अलबत्ता हूँ; पर जब मैं अपने दोष और दूसरों के गुण देखता हूँ तब हृदय कहने लगता है—'मो सम कौन कुटिल खल कामी?'

× × ×

योग्यता छिपी नहीं रहती। योग्य की क़दर हुए बिना नहीं रह सकती। फूल खिलता है तो लोग उसकी ओर खिंच कर जाते हैं। महक फैलती है तो लोग खोजते हुए वहाँ पहुँचते हैं।

× × ×

पर कितने ही फूल बन में खिल कर मुरझा जाते हैं। मनुष्य उनका पता नहीं पाता। योग्यता होना एक वस्तु है, योग्यता का परिचय देना दूसरी वस्तु है। योग्यता का परिचय देना एक वस्तु है, योग्यता के अभाव को योग्यता समझ लेना और उसका ढिंढोरा पीटना दूसरी वस्तु है।

× × ×

मेरे दरवाजे दो बबूल के पौधे बढ़ रहे हैं। मित्र लोग कहते हैं—ये तुमने काँटे के पेड़ क्या दरवाजे पर लगा रक्खे हैं? मैं हँस कर कह देता हूँ—आश्रम का आदर्श है, मेरी सहनशीलता का नमूना है।

× × ×

मैं स्वार्थी हूँ; क्योंकि मैं 'गुण-ग्राहक' हूँ। मैं और के गुण देखकर ले लेने की कोशिश करता हूँ।

× × ×

मेरा पड़ोसी परमार्थी है; क्योंकि वह 'समालोचक' है। वह औरों के दोष दिखाता है। उन्हें अपने दोषों को दूर करने का मौका देता है।

× × ×

दूसरों में जो बुराइयाँ या भलाइयाँ हमें दीखा करती हैं, वे प्रायः हमारे ही हृदय के बुरे-भले भावों का प्रतिबिम्ब-मात्र होती हैं। यदि हमारे अन्दर बुरे तत्व अधिक हैं, तो हमें सामने वाले की बुराइयाँ पहले और अधिक दिखाई देंगी; और अच्छे तत्व अधिक हैं, तो अच्छाइयाँ दिखाई देंगी।

× × ×

आलोचक और सुधारक दो अलग चीज होते हैं। आलो-

चक अपनी छाप दूसरों पर बिठाना चाहता है; सुधारक प्रेम-मय, मधुरता-मय, उपालम्भ से काम लेता है।

× × ×

जो मनुष्य केवल दोषों की खोज करता है, वह नीच है; जो गुण-दोष दोनों की खोज करता है, वह मध्यम; और जो केवल गुणों पर ध्यान रखता है, वह उत्तम है।

× × ×

वही मनुष्य सफल नेता हो सकता है, जो केवल गुणों की खोज में रहता है और यदि कहीं दोष दिखाई दिया तो उसे दुनिया में नहीं फैलाता बल्कि सावधानी से उसे दूर करने की चेष्टा करता है।

× × ×

जो दोष खोजता है वह मानों इस बात का ढिंढोरा पीटता है कि मुझमें दोष ही देखने की शक्ति है—मुझे दोष देखने का शौक है—स्वयं मेरा हृदय दोष से व्याप्त है। मेरे दोष ही मुझे औरों में देख पड़ते हैं। यही बात गुण-ग्राहक पर भी चरितार्थ होती है।

× × ×

गिराने की चेष्टा करना, सुधार का उद्योग करना नहीं है। सुधारक तो ऊँचा उठाना चाहता है।

× × ×

भूल करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक हो सकता है; पर भूल का समर्थन करना शैतान का काम है।

× × ×

विद्या का अभिमान और धन का अभिमान दोनों बराबर है—नहीं, बल्कि विद्या अथवा विद्वान् का अभिमान अधिक अस्वाभाविक अतएव दूषणीय है। विद्या, योग्यता और ज्ञान का फल तो होना चाहिए विनय; अभिमान तो अविद्या का पुत्र है।

× × ×

विद्वान् अथवा योग्यता-विशेष रखने वाला अभिमानी धन के अभिमानी को कैसे सफलता-पूर्वक कोस और सुधार सकता है?

× × ×

मैं अपने को साम्यवादी कहता हूँ। धन, ऐश्वर्य और सत्ता का उपभोग करने वालों को मैं दोषी मानता हूँ। पर आश्चर्य यह है कि धन, ऐश्वर्य या सत्ता मिलने पर मै भी वैसा ही करने लग जाता हूँ।

× × ×

मैं समाज के हित के लिए साम्यवादी बना हूँ या अपने हित के लिए ?

× × ×

अपनेको समझदार और दुनिया के व्यवहार में कुशल समझने वाले कुछ मित्र कहा करते हैं—'सेवा भी दूकानदारी के—दुनियादारी के ढंग से करनी चाहिए।'

× × ×

पर, जहाँ तक मैं जानता हूँ, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नानक, शंकर, दयानन्द, तिलक, गोखले, गाँधी, ईसा-मसीह तो दूकानदारी और दुनियादारी नहीं सीखे थे।

× × ×

जो दूसरों में हमेशा बुराई ही देखता है वह आशावादी नहीं हो सकता—बड़े काम उसके भाग्य में नहीं बदे।

× × ×

'समझदारी' कहती है—'देखो, तुम भले हो, भोले हो; दुनिया तुमको ठग लेगी।' मैं कहता हूँ—'इससे मेरा क्या बिगड़ेगा, दुनिया दुःख पायगी। बुरा वह करती है, न कि मैं ?'

× × ×

क्या इसलिए कि दुनिया में बुरे और ठग हैं, मैं अपने

अच्छे और हितकर कामों के विस्तार को रोकूँ ? इसलिए कि चूहे खा जायँगे, क्या महाजन अनाज का संग्रह नहीं करता ? इस भय से कि ओले गिरेंगे, क्या किसान खेती नहीं करता ?

× × ×

जब कोई मेरी निन्दा करता है तब मैं दो बातें सोचता हूँ—निन्दा सच्ची है या झूठी ? यदि सची है तब तो मैं उसका सर्वथा पात्र हूँ। मुझे निन्दक को धन्यवाद देना चाहिए कि उसने मेरे रोग की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया; यदि झूठी है तो ग़लती का क़सूर उसका है, न कि मेरा ? इसलिए दण्ड उसे मिलना चाहिए। मैं क्रोध करके उसके अपराध की सजा स्वयं अपनेको क्यों दूँ ?

× × ×

एक मित्र ने दूसरे मित्र की तारीफ़ की। उन्होंने कहा—'अब विशेषणों का युग नहीं, क्रियाविशेषणों का युग है।'

× × ×

कुछ मित्र कहा करते हैं—"सब सम्पादक अपने को 'हम' लिखते हैं, तुम 'मैं' क्यों लिखते हो ?" मैं कहता हूँ, "इसलिए कि वे बड़े हैं और मैं अपनेको एक मामूली आदमी समझता हूँ। वे अपनेको प्रतिनिधि समझते हैं, और मैं अपनेको

एक मामूली सेवक। व्यवहार भी तो यही बताता है—बड़े आदमी अपनेको 'हम' कहते हैं, छोटे आदमी मैं।"

× × ×

कभी-कभी कोई मित्र कहते हैं—'तुम्हारी मिठास से कभी-कभी धोखा हो जाता है। इससे तो खरी और कड़वी बात बहुत अच्छी होती है।' मैं कहता हूँ—'यदि ऐसा है तो यह मेरा क़सूर होगा; मिठास का नहीं। बात खरी भी हो और मीठी भी हो, तो क्या बुरा है ?'

× × ×

आजकल नेताओं को कोसने की बीमारी चल पड़ी है। कभी-कभी मन में यह शंका उठ खड़ी होती है कि कहीं कोसने वाले तो नेतागिरी के मर्ज़ में मुब्तिला नहीं हैं ?

× × ×

नेता बनने की इच्छा बुरी नहीं, पर केवल औरों को कोस कर नेता बनने का उदाहरण इतिहास में शायद ही मिले।

× × ×

अपनेको बड़ा मान लेने से केवल अपनी ही हानि नहीं होती, केवल अपनी ही उन्नति नहीं रुकती, बल्कि औरों के

भी

साथ भी अन्याय होता है—उन्हें हम तुच्छ दृष्टि से देखने लगते हैं।

× × ×

अहंकार कई बार आत्म-सम्मान के रूप में आकर हमें धोखा दे जाता है! मान तो वह, जिसकी चिन्ता हमें न करनी पड़े।

× × ×

एक मित्र ने कहा—'त्यागभूमि' तुमने निकाली तो खूब है, पर इस प्रतिस्पर्धा के युग में उसे टिका कैसे सकोगे? मैंने उत्तर दिया—मेरे सामने प्रतिस्पर्धा का सवाल नहीं है। मेरे सामने तो सिर्फ एक ही बात है—'त्यागभूमि' के द्वारा देश की अधिक से अधिक सेवा किस तरह हो? जिस दिन उसमें से सेवा का भाव निकल जायगा, उस दिन प्रतिस्पर्धा न होगी तो भी वह न टिक सकेगी।

× × ×

एक सज्जन लिखते हैं—"आप तो त्याग का उपदेश करते हैं, खुद ही त्याग करके 'त्यागभूमि' मुझे बिना मूल्य भिजवा दीजिए।" यदि सभी ग्राहक इतने उस्ताद हो जायँ और हमें

त्याग की इस कसौटी पर कसने लगें, तो शायद 'त्यागभूमि' को अपना जीवन ही त्याग देना पड़े।

× × ×

संस्थायें धन पर नहीं चलतीं; निःस्वार्थ सेवा, अविचल लगन और अटूट श्रद्धा पर चलती है।

× × ×

कार्यकर्त्ता शिकायत करते हैं कि काम नहीं मिलता, कोई काम नहीं देता। कार्य-संचालक उलहना देते हैं, काम करने वाले नहीं मिलते। कहिए, किसका दुःख सच्चा है?

× × ×

कार्यकर्त्ता यदि सेवा के मतवाले हों तो काम उनके लिए क़दम-क़दम पर मौजूद है। यदि वे सेवा का शौक़ पूरा करना चाहते हों तो प्रलयकाल तक उनकी शिकायत का कोई इलाज नहीं हो सकता।

× × ×

कार्य-संचालक उन्हींको सेवा-योग्य समझते हैं, जो उनकी कड़ी से कड़ी कसौटी पर सौ टंच के साबित हों। पर उन कच्चे लेकिन सच्चे लोगों का क्या हो, जो सहृदयता का हाथ आगे बढ़ने से आगे चलकर परिपक्व हो सकते हैं, पर उसके

साथ भी अन्याय होता है—उन्हें हम तुच्छ
लगते हैं।

× × ×

अहंकार कई बार आत्म-सम्मान के रूप में
धोखा दे जाता है। मान तो वह, जिसकी चिन्ता
पड़े।

× × ×

एक मित्र ने कहा—'त्यागभूमि' तुमने नि
है, पर इस प्रतिस्पर्धा के युग में उसे टिका कैसे
उत्तर दिया—मेरे सामने प्रतिस्पर्धा का सवाल
सामने तो सिर्फ एक ही बात है—'त्यागभूमि'
की अधिक से अधिक सेवा किस तरह हो? जि
से सेवा का भाव निकल जायगा, उस दिन
तो भी वह न टिक सकेगी।

× × ×

एक सज्जन लिखते हैं—"आप तो त्याग का
हैं, खुद ही त्याग करके 'त्यागभूमि' मुझे बिना
दीजिए।" यदि सभी ग्राहक इतने उस्ताद हो

त्याग की इस कसौटी पर कसने लगें, तो शायद 'त्यागभूमि' को अपना जीवन ही त्याग देना पड़े।

× × ×

संस्थायें धन पर नहीं चलतीं; निःस्वार्थ सेवा, अविचल लगन और अटूट श्रद्धा पर चलती हैं।

× × ×

कार्यकर्त्ता शिकायत करते हैं कि काम नहीं मिलता, कोई काम नहीं देता। कार्य-संचालक उलहना देते हैं, काम करने वाले नहीं मिलते। कहिए, किसका दुःख सच्चा है?

× × ×

कार्यकर्त्ता यदि सेवा के मतवाले हों तो काम उनके लिए क़दम-क़दम पर मौजूद है। यदि वे सेवा का शौक़ पूरा करना चाहते हों तो प्रलयकाल तक उनकी शिकायत का कोई इलाज नहीं हो सकता।

× × ×

कार्य-संचालक उन्हींको सेवा-योग्य समझते हैं, जो उनकी कड़ी से कड़ी कसौटी पर सौ टंच के साबित हों। पर उन कच्चे लेकिन सच्चे लोगों का क्या हो, जो सहृदयता का हाथ आगे बढ़ने से आगे चलकर परिपक्व हो सकते हैं, पर उसके

साथ भी अन्याय होता है—उन्हें हम तुच्छ दृष्टि से देखने लगते हैं।

× × ×

अहंकार कई बार आत्म-सम्मान के रूप में आकर हमें धोखा दे जाता है। मान तो वह, जिसकी चिन्ता हमें न करनी पड़े।

× × ×

एक मित्र ने कहा—'त्यागभूमि' तुमने निकाली तो खूब है, पर इस प्रतिस्पर्धा के युग में उसे टिका कैसे सकोगे? मैंने उत्तर दिया—मेरे सामने प्रतिस्पर्धा का सवाल नहीं है। मेरे सामने तो सिर्फ एक ही बात है—'त्यागभूमि' के द्वारा देश की अधिक से अधिक सेवा किस तरह हो? जिस दिन उसमें से सेवा का भाव निकल जायगा, उस दिन प्रतिस्पर्धा न होगी तो भी वह न टिक सकेगी।

× × ×

एक सज्जन लिखते हैं—"आप तो त्याग का उपदेश करते हैं, खुद ही त्याग करके 'त्यागभूमि' मुझे बिना मूल्य भिजवा दीजिए।" यदि सभी ग्राहक इतने उस्ताद हो जायँ और हमें

त्याग की इस कसौटी पर कसने लगें, तो शायद 'त्यागभूमि' को अपना जीवन ही त्याग देना पड़े।

× × ×

संस्थायें धन पर नहीं चलतीं, निःस्वार्थ सेवा, अविचल लगन और अटूट श्रद्धा पर चलती हैं।

× × ×

कार्यकर्त्ता शिकायत करते हैं कि काम नहीं मिलता, कोई काम नहीं देता। कार्य-संचालक उलहना देते है, काम करने वाले नहीं मिलते। कहिए, किसका दुःख सच्चा है?

× × ×

कार्यकर्त्ता यदि सेवा के मतवाले हों तो काम उनके लिए क़दम-क़दम पर मौजूद है। यदि वे सेवा का शौक पूरा करना चाहते हों तो प्रलयकाल तक उनकी शिकायत का कोई इलाज नहीं हो सकता।

× × ×

कार्य-संचालक उन्हींको सेवा-योग्य समझते है, जो उनकी कड़ी से कड़ी कसौटी पर सौ टंच के साबित हों। पर उन कच्चे लेकिन सच्चे लोगों का क्या हो, जो सहृदयता का हाथ आगे बढ़ने से आगे चलकर परिपक्व हो सकते हैं, पर उसके

अभाव में सेवेच्छु जीवन गुलामी का जीवन हो सकता है ? क्या इन बेचारों के लिए सेवा का दरवाजा बन्द रहना ही ठीक है ?

× × ×

स्वार्थ-भाव, न्याय-भाव और सेवा-भाव ये मनुष्य के विकास की उत्तरोत्तर सीढियाँ हैं। स्वार्थ-भाव में दूसरे का हिताहित गौण होता है, न्याय-भाव में अपना और दूसरों का हिताहित समान होता है, सेवा-भाव में दूसरे के हित की प्रधानता होती है। स्वार्थी मनुष्य निष्ठुर होता है, न्यायी कठोर होता है, और सेवार्थी सदय—सहृदय।

× × ×

यदि अपने सुख से सम्बन्ध रखने वाली श्रेष्ठ और कनिष्ट दो वस्तुओं में से किसी एक को पसन्द करने का अवसर आवे, तो कनिष्ट वस्तु को स्वीकार करो। यदि लड्डू और रोटी में से, गद्दे और चटाई में से, हाथी की सवारी और बहेली में से, दूध और छाछ में से, किसी एक चीज़ को पसंद करना हो, तो देश-सेवक को रोटी, चटाई, बहेली और छाछ पसन्द करनी चाहिए।

× × ×

पर यदि कर्तव्य-पालन करने का अवसर हो और कठिन तथा आसान बात में से किसी एक को चुनने का प्रसंग आवे, तो सुधारक को चाहिए कि वह कठिन व कष्टप्रद बात को अङ्गीकार करे।

× × ×

जिसे समय पर खाना खाने की सुध रहती है, जो कभी बीमार नहीं पड़ता, जिसका वजन घटता नहीं रहता, जिसे दूध-फल खाने को पैसे मिल जाते हैं, जो साफ-सुथरे कपड़े तरतीब से पहनता है, जिसे हास्य-विनोद के लिए समय मिल जाता है, वह कैसा देश-भक्त ? जिसे रात-दिन देश की सच्ची चिन्ता रहती है, उसे भला इन सब बातों के लिए होश कैसे रह सकता है !

× × ×

'सेवक' को पेट की चिन्ता न होनी चाहिए। जो पेट की चिन्ता करता है वह सेवा नहीं कर पाता।

× × ×

कष्ट से डरना और बड़े काम करने की अभिलाषा रखना, बदनामी से डरना और सुधारक बनने की इच्छा रखना वैसा ही है, जैसा बिना पुण्य किये स्वर्ग पाने की लालसा रखना।

× × ×

सत्कार्य के भान से जो आनन्द और सन्तोष हमें मिलता है, वह विघ्नों का स्वागत करने और उनसे लड़ने का उत्साह प्रदान करता है।

× × ×

जबतक मनुष्य यह कहता रहता है—'मुझे किसीने क्या समझा है? मैं भी कुछ ताकत रखता हूँ। मैं यह करके दिखा दूँगा।' तबतक उसपर विकार की प्रबलता समझनी चाहिए; जब मनुष्य यह कहने लगता है—'मैं' हूँ, मैं कुछ नहीं हूँ—उस दयामय सर्वशक्तिमान् के हाथ का एक खिलौना भर हूँ, उसकी दया और शक्ति दुनिया में कौनसा चमत्कार नहीं दिखा सकती?' तब समझना चाहिए कि विचार और ज्ञान की सत्ता जमने लगी है।

× × ×

क्षणिक जोश, अधैर्य, निराशा और आत्म-विश्वास की कमी—ये नास्तिकता के चिह्न हैं।

× × ×

जबतक हम बाहरी परिस्थिति से उत्साहित अथवा अनुत्साहित होते रहते हैं, तबतक, समझना चाहिए, हमने अपनेको और ईश्वर को नहीं पहचाना है।

× × ×

जो जिस अंश तक अपनेको सुधारता है, उसी अंश तक उसकी सेवा में बल आता है।

× × ×

यदि हमारी बात का असर किसी पर नहीं होता तो हमारे रोष का पात्र वह नहीं, हमारी त्रुटियाँ और कमजोरियाँ हैं। रोष में आकर हम अपने अपराध का दण्ड दूसरों को देते हैं।

× × ×

ललचानेवाली वस्तुओं में ही जबतक हमें आनन्द आता है तबतक खतरा है। जब हम सरस और नीरस दोनों वस्तुओं में सन्तोष को पाने लगते हैं तब हम जीत गये।

× × ×

सफलता और विफलता दोनों मनुष्य के अनुमान से परे और भिन्न होती हैं। मनुष्य की बुद्धि, कल्पना मर्यादित है और उसके कार्यों पर असर डालनेवाली बुरी-भली शक्तियाँ अमर्यादित और अज्ञात रहती हैं।

× × ×

दुनिया में एक भी आदमी ऐसा पैदा नहीं हुआ जिसने, अपने अनुमान के अनुसार, सफलता होती हुई देखी हो। अतएव मनुष्य का कर्त्तव्य केवल इतना ही है कि शुभ हेतु से सत्कर्म किये जाय। उसका अच्छा फल अवश्यम्भावी है।

देशभक्तों का महल क्या है ? जेलखाना। बेड़ियाँ तो मानों उनके गले में फूलमालायें हैं। चिता उनका सिंहासन और शूली राजदण्ड समझिए। और मृत्यु ही उनकी असीम अमरता है।

× × ×

कुछ मनुष्य कहा करते हैं कि जबतक हमको पूरी स्वतन्त्रता नहीं दी जाती तबतक हमारा मन काम में नहीं लग सकता, पर देखते हैं कि कार्यतः और परिणामतः स्वतन्त्रता का अर्थ हो जाता है शिथिलता।

× × ×

जो नियम-बद्धता को नहीं मानता है वह वास्तव में स्वतन्त्रता को भी नहीं मानता है। प्रकृति स्वतन्त्र है, क्योंकि वह नियमबद्ध है।

× × ×

जो दूसरों पर विश्वास नहीं रखता, वह अपने पर विश्वास रखने में भी कच्चा होना चाहिए।

× × ×

हृदय-परिवर्त्तन का सामर्थ्य एक-मात्र विश्वास में है। अविश्वास असफलता का बीज है।

× × ×

लोग अक्सर झूठी निन्दा करनेवाले पर बिगड़ उठते हैं और अपने जी को भी बहुत जलाया करते है। मैं कहता हूँ, झूठी निन्दा होने या सुनने पर हम क्यों दुःखी हों? कुसूर करता है निन्दक, सजा देते हैं हम अपने को!

× × ×

अक्सर लोग कहा करते हैं, सत्य तो कड़वा होता है। मेरी तो धारणा ऐसी होती जाती है कि सत्य और कटुता एक-साथ नहीं रह सकते।

× × ×

(मनुष्य या तो गुस्से में, या निराशा में, या धीरज छोड़ते हुए, कड़वी बात मुँह से निकालता है। सत्य का पुजारी इन तीनों दोषों से बचता रहता है।)

× × ×

जब मनुष्य दिन-रात यही सोचने लगता है कि मेरी बातों का प्रभाव दूसरों पर पड़े, तो क्या वह अपनी मर्यादा के बाहर नहीं जाता है?

× × ×

मनुष्य सिर्फ इतना ही क्यों न सोचे कि मेरा कर्त्तव्य क्या है और मैं उसका कहाँ तक सच्चाई के साथ पालन कर रहा हूँ?

जो सच्चा कर्त्तव्य-परायण है उसका प्रभाव अपने साथियों पर और दूसरों पर क्यों न पड़ेगा ?

× × ×

पर यदि नहीं पड़ता है, तो क्या यह अपना दोष नहीं है ? जरूर अपनी कर्त्तव्य-परायणता में कमी है—जरूर अपनी तपस्या अधूरी है।

× × ×

और तपस्या क्या है ? अपने विचार और उच्चार के अनुसार आचार। यदि मैं ऐसा क्रियावान् हूँ, तो फिर मेरे बिना कहे ही मेरे साथी कर्तव्य-परायण बनने का उद्योग करेंगे।

× × ×

यदि विनोद पूर्ण व्यंग्य, स्नेहपूर्ण उपालम्भ और मधुर आलोचना से मेरा साथी सजग नहीं होता है, अपने कर्तव्य का यथावत् पालन नहीं करता है, तो फिर कठोर वचन उसके लिए बेकार है। कठोर वचन कहने की अपेक्षा मैं अपनी आत्म-शुद्धि, आत्म-ताड़ना का उद्योग क्यों न करूँ ?

× × ×

संसार में जो दोष और बुराई है वह मेरी ही बुराई का

प्रतिबिम्ब है। मुझे अपनी इस जिम्मेवारी को खूब समझ लेना चाहिए।

× × ×

पर क्या दुनिया के बोझ को अपने सिर लेना अहंकार नहीं है—ईश्वरत्व का दावा नहीं है?

× × ×

यदि इस भाव का परिणाम यह हो कि मेरी आत्म-शुद्धि बढ़ती हो और दूसरों की सेवा करने की वृत्ति दृढ़ होती हो, तो यह हद दर्जे की नम्रता और सचाई है—यदि दूसरों से सेवा लेने की वृत्ति बढ़ती हो, अपने बड़प्पन का भाव तीव्र होता हो, तो यह अवश्य अहंकार और पाखण्ड है।

× × ×

क्रोध और आतुरता के मूल में क्या अहंकार नहीं है? क्रोध प्रायः तभी आता है, जब कोई हमारी इच्छा की पूर्ति नहीं करता। क्या दूसरा मनुष्य इसके लिए बाध्य है? उसे ऐसा समझ लेना क्या मेरा अहंकार नहीं है? और क्या आतुरता इस बात की नहीं सूचित करती कि मनुष्य-समाज को तथा प्रकृति को वश में रखने की सत्ता मुझे प्राप्त है?

× × ×

यह सत्ता वास्तव में जिसके पास होती है उसे आप अधीर और आतुर न पावेंगे।

× × ×

सत्ता शासन के लिए नहीं, कार्य की सुव्यवस्था और सुचारुता के लिए मिलती है। सत्ता जहाँ सुव्यवस्था में असफल होती है वहाँ प्रेम की जीत अवश्य होती है।

× × ×

(जो अपने प्रति कठोर और साथियों के प्रति सहृदय होता है वह बिना सत्ता के शासक हो जाता है।) उसके हुक्म प्रेम के सन्देश होते हैं और साथी उनके लिए उत्सुक रहते हैं।

× × ×

पर जहाँ अपने प्रति रिआयत का, विशेषाधिकार का भाव हो और साथियों के प्रति कठोरता का, तो वहाँ सत्ता का शासन भी बेकार होता है। उसका पुरस्कार मिलता है—'अप्रतिष्ठा'।

× × ×

सफाई के साद नियमों का पालन कार्य की सुचारुता और सुव्यवस्था के लिए अनिवार्य है। जो सेवक इनकी उपेक्षा करता

है वह दूसरे के आराम को अपनी सुविधा पर कुरबान कर देना चाहता है।

× × ×

काम तो पूरा और अच्छा किसी के मन लगाकर करने से ही होगा। यदि मैं उससे जी चुराता हूँ, तो क्या मैं अपना भार दूसरों पर नहीं टालता हूँ? क्या मैं अपनी त्रुटि का दण्ड दूसरों को नहीं देता हूँ?

× × ×

सदा दूसरों के दोष देखना, सदा दूसरों पर अविश्वास रखना, अपने ही हृदय की मलीनता का लक्षण है। सावधानता, जागरूकता एक बात है, और अविश्वास दूसरी।

× × ×

अपने कार्यों के परिणाम की अपेक्षा हम अपने हृदय की प्रवृत्तियों को ही क्यों न देखते रहें? फल तो आख़िर वैसा ही निकलेगा, जैसा हमारा भाव होगा? फल के सम्बन्ध में हम लोगों को धोखा दे सकते हैं; अपने मनोभाव के सम्बन्ध में तो हम अपने को धोखा नहीं दे सकते।

× × ×

हृदय की सच्चाई के साथ बाहरी आव-भगत मनुष्यता का

यह सत्ता वास्तव में जिसके पास होती है उसे आप अधीर और आतुर न पावेंगे।

× × ×

सत्ता शासन के लिए नहीं, कार्य की सुव्यवस्था और सु-चारुता के लिए मिलती है। सत्ता जहाँ सुव्यवस्था में अस-फल होती है वहाँ प्रेम की जीत अवश्य होती है।

× × ×

(जो अपने प्रति कठोर और साथियों के प्रति सहृदय होता है वह बिना सत्ता के शासक हो जाता है।) उसके हुक्म प्रेम के सन्देश होते हैं और साथी उनके लिए उत्सुक रहते हैं।

× × ×

पर जहाँ अपने प्रति रिआयत का, विशेषाधिकार का भाव हो और साथियों के प्रति कठोरता का, तो वहाँ सत्ता का शासन भी बेकार होता है। उसका पुरस्कार मिलता है—'अप्रतिष्ठा'।

× × ×

कड़ाई के साथ नियमों का पालन कार्य की सुचारुता और सुव्यवस्था के लिए अनिवार्य है। जो सेवक इसकी उपेक्षा करता

है वह दूसरे के आराम को अपनी सुविधा पर कुरबान कर देना चाहता है।

× × ×

काम तो पूरा और अच्छा किसी के मन लगाकर करने से ही होगा। यदि मैं उससे जी चुराता हूँ, तो क्या मे अपना भार दूसरों पर नहीं डालता हूँ? क्या मैं अपनी त्रुटि का दण्ड दूसरों को नहीं देता हूँ?

× × ×

सदा दूसरों के दोष देखना, सदा दूसरों पर अविश्वास रखना, अपने ही हृदय की मलीनता का लक्षण है। सावधा-नता, जागरूकता एक बात है, और अविश्वास दूसरी।

× × ×

अपने कार्यों के परिणाम की अपेक्षा हम अपने हृदय की प्रवृत्तियों को ही क्यों न देखते रहें? फल तो आख़िर वैसा ही निकलेगा, जैसा हमारा भाव होगा? फल के सम्बन्ध में हम लोगों को धोखा दे सकते हैं; अपने मनोभाव के सम्बन्ध में तो हम अपने को धोखा नहीं दे सकते।

× × ×

हृदय की सच्चाई के साथ बाहरी आव-भगत मनुष्यता का

भूषण है, इसके विपरीत वह मलीनता और पाखण्ड का अचूक प्रदर्शन है।

× × ×

कठोर व्यवस्थापक यदि लोकप्रिय भी है, तो समझ लो, वह पूरा साधु है।

× × ×

आजकल 'पूज्य' विशेषण बड़ा सस्ता हो रहा है। मैं जब अपने पूज्य व्यक्तियों के चरित्र को देखता हूँ तो अपनी पामरता पर ग्लानि होने लगती है, और ऐसा जान पड़ता है, मानों इन विशेषणों का प्रयोग करनेवाले अपने प्रेम का पुरस्कार नहीं, वरन् मेरी पामरता का दण्ड मुझे दे रहे हैं।

× × ×

यह उनके प्रति कृतघ्नता नहीं, अपनी अपात्रता के प्रति लज्जा-प्रदर्शन है।

× × ×

भय से उद्गार अच्छा, उद्गार से आवेश अच्छा, आवेश से संयम अच्छा, सयम से मौन अच्छा। (भयमूलक मौन पतनकारी है; सयमोत्तर मौन अविराम प्रबल कार्यकर्ता है।)

× × ×

जब निराशा आने लगे तो पीछे वालों को पिछले मुक़ामों को देखना चाहिए, जब अहंकार आने लगे तो आगे वालों को अगले मुक़ामों को देखना चाहिए।

× × ×

कोई मेरे सामने नम्र नत-मस्तक होकर आता है, तो मुझे शर्म मालूम होनी चाहिए—वे लोग कैसे होंगे, जो किसी बाहरी बल के द्वारा दूसरों को अपने सामने झुकाने में अपना गौरव समझते हैं ?

× × ×

यह भी कैसी आश्चर्य की और अटपटी बात है कि मैं स्वयं तो नम्र बनकर जाना पसन्द करता हूँ—उसे आत्मा की उन्नति का लक्षण मानता हूँ; पर दूसरों को अपने सामने नम्र बनकर आते हुए देखकर शर्म और ग्लानि से घबराता हूँ।

× × ×

जिसे अपने दोष और त्रुटियाँ देख पड़ती हैं, वह नम्र होता है; जिसे दूसरों के ऐब और बुराइयाँ देखने की आदत होती है, वह उद्धत।

× × ×

जो समय-असमय अपने बली और निर्भय होने की घोषणा

करता रहता है, वास्तव में उसकी निर्बलता और भय ही उभक-उभक कर उससे यह कहलाते हैं।

× × ×

स्वाभिमान मनुष्यता का पहला लक्षण है। मान और अपमान के दायरे से ऊपर उठ जाना श्रेष्ठ मनुष्यता है।

× × ×

जब कोई बलपूर्वक हमारे स्वाभिमान को कुचलना चाहे, तो हमें प्राण-पण से उसका प्रतीकार करना चाहिए, पर हमें अपने-आप अपने स्वाभिमान को मानापमान की विस्मृति के रूप में परिणत करने का उद्योग करना चाहिए।

× × ×

(अपमान का ज्ञान न होना, उसको महसूस न करना, जड़ता है, पशुता है। स्वाभिमान के मान में तेजस्विता और मनुष्यता है। मानापमान से परे हो जाना मनुष्यता को श्रेष्ठ बनाना है।)

× × ×

∨ तमोगुण के अर्थ हैं—जड़ता, प्रमाद, आलस्य, अकर्मण्यता। रजोगुण का लक्षण है—क्रिया-शीलता। सतोगुण का सार है—विवेक-युक्त क्रिया, कार्याकार्य का सम्यक् ज्ञान।

× × ×

जहाँ जड़ता, प्रमाद, आलस्य और अकर्मण्यता का राज्य है वहाँ मनुष्यता नहीं। मनुष्यता का आरम्भ, मेरी राय में, क्रियाशीलता से होता है। क्रियाशीलता में विवेक का योग हो-जाने से मनुष्यता सार्थक और सफल हो जाती है।

× × ×

जड़ता से उद्यतता अच्छी, उद्यतता से शान्ति और क्षमा-शीलता अच्छी।

× × ×

जब हम डर कर दबते हैं तब उसे क्षमा नहीं कह सकते। जब हम दया खाकर उदार बनते हैं तब उसका नाम है क्षमा।

× × ×

दब जाने से प्रहार अच्छा; प्रहार से क्षमा अच्छी।

× × ×

हिन्दुस्तान में तोड़ने वाले बहुत, जोड़ने वाले कम हैं।

× × ×

बाहरी शत्रु हमारे भीतरी शत्रुओं की पहुँचाई रसद पर जीते हैं। इसलिए मनुष्य, यदि तू अ-जातशत्रु होना चाहता है तो भीतरी शत्रुओं को पहले परास्त कर।

× × ×

यदि तू बाहरी शत्रुओं को तो हरा सका, पर भीतरी शत्रु घर में बने ही रहे, तो याद रख, नये-नये बाहरी शत्रुओं से तेरा पिण्ड कभी न छूट सकेगा। ये भीतरी शत्रु कब्र में से फिर जिन्दा करके उन्हें बुला लेंगे।

× × ×

मेरा स्वभाव खुद एक-तन्त्री है, पर मैं जनतन्त्र की माँग करता हूँ। क्या यहाँ जनतन्त्र का अर्थ 'मेरा तन्त्र' नहीं हो जाता ?

× × ×

मैं चिल्ला कर कहता हूँ—रे साहित्य-सम्मेलन करो। छाती पीटकर रोता हूँ—जी कोई सभापति ही नहीं मिलता। उधर से ज़ोर की चीख आती है—अरे किसी को मेरी बेड़ियों की भी फ़िक्र है ?

× × ×

मैं देश-भक्त हूँ। अपने खर्च-वर्च के लिए देशवासियों से पैसा नहीं मांगता। लेक्चर भी ऐसे जोशीले, ज़ोरदार और उभाड़ने वाले देता हूँ कि भगतसिंह और दत्त के बम भी उसके आगे क्या चीज़ हैं ? मैं युवकों को पिस्तौल चलाने, बम बनाने की विद्या भी सिखाने को तैयार रहता हूँ। पूँजीपतियों को,

साम्राज्यवादियों को भर-पेट गाली देता हूँ। किसानों, मजदूरों और युवकों के आन्दोलन में अग्रसर होता हूँ। फिर भी तारीफ यह कि सरकार हम लोगों को छू तक नहीं सकती।'

'...इतना होते हुए भी भाई—देखो तो,...का जुल्म! कहता है यह तो सी० आई० डी० में है।'

× × ×

मैं सज्जन बनने का यत्न करूँ या बलवान बनने का?'

× × ×

'कमजोर रहने से तो बलवान बनना लाख दर्जे अच्छा है। पर क्या सज्जन बनना बलवान बनने से श्रेष्ठ नहीं है?

× × ×

'दूसरे की सहायता करना जहाँ पुण्य है, तहाँ दूसरे से सहायता लेना क्या कमजोरी और जिल्लत नहीं है?

× × ×

'बल हमें किस लिए चाहिए? अपनी और दूसरों की रक्षा के ही लिए न?

× × ×

'क्या सज्जनता हमारी रक्षा के लिए काफ़ी नहीं है? और

क्या हमारे बल का उपयोग सदा औरों की रक्षा के ही लिए होता है ?

× × ×

'बल' के अन्दर क्या सत्ता, अहंकार, मान विजिगीषा का भाव छिपा हुआ नहीं है ?

× × ×

'तुनुकमिजाजी' क्या अहंकार का रूप नहीं है ? 'तुनुकमिजाजी' क्या यह नहीं कहती कि 'सब मेरी ही बात मानो, मेरी मर्जी के खिलाफ तुमने कुछ भी किया तो मैं बिगड़ जाऊँगा, तुम्हारा साथ न दूँगा ?'

× × ×

और, एक देश-सेवक को 'तुनुकमिजाजी' क्या लाभकर है ?

× × ×

जब कोई देश-सेवक यह कहता है कि काम में मेरा जी नहीं लगता, तब उसकी कर्तव्य-निष्ठा और लगन में मुझे संदेह होने लगता है। यह मेरा पतन है या उसका ?

× × ×

(वेग और विवेक के उचित सामजस्य से सफलता नामक महाईस

रसायन बनता है। वेग की अधिकता होने से शक्ति व्यर्थ जाती है, और विवेक की अधिकता से अकर्मण्यता आती है।)

× × ×

(युवावस्था वेग की और वृद्धावस्था विवेक की प्रतिनिधि होती है।)

× × ×

सत्य और कटुता एक जगह नहीं रह सकते। सत्याग्रह जबतक इस बात का विचार नहीं रखता कि मेरी बात या व्यवहार से दूसरे के दिल को चोट पहुँचेगी तबतक सत्य का उदय उसके हृदय में न हुआ समझिए।

× × ×

जहाँ दूसरे के दिल को न दुखाने की मृदुलता नहीं है, वहाँ अहिंसा के अस्तित्व में सन्देह है; और जहाँ अहिंसा नहीं, वहाँ सत्य की कल्पना निरर्थक है।

× × ×

मनुष्य के दुःख का ख्याल करने से अधिक पुण्य है पशु के दुःख का ख्याल करना; क्योंकि वह मूक है और अपने दुःख आप दूर नहीं कर सकता।

× × ×

पर मनुष्य तो अपने से हीन समझकर उन्हें खा जाता है—उन्हें जीते जी मारकर उनका माँस खाता है, उसपर जीता है, उससे अपने बल को बढ़ाकर अपनी स्वाधीनता लेना चाहता है।

× × ×

ऐसे मनुष्य को मिली स्वाधीनता उससे कमजोर के लिए कैसी साबित होगी? आज गुलाम होने पर जो मनुष्य इतना निष्ठुर और स्वार्थी है, वह स्वाधीनता के मद में उन्मत्त होकर क्या नहीं करेगा?

× × ×

ईश्वर की सृष्टि में अकेले मनुष्य ही नहीं हैं। बेबस, बेकस, बेज़बान, पशुओं और परिन्दों को मारकर खाना या खिलाना, अरे सहृदय और अपने को पशु से श्रेष्ठ समझने वाले मनुष्य, तुझे क्योंकर अच्छा लगता है? मरते समय उनकी करुण-चीत्कार क्या तेरे दिल को टूक-टूक नहीं कर देती? उसके बाल-बच्चों का करुण क्रन्दन क्या तेरे वज्र हृदय को हिलाने के लिए काफी नहीं है?

× × ×

यदि मैं दूसरे का दिल दुखने की पर्वा किये बिना कोई

बात कहता हूँ, या करता हूँ, तो मैं हिंसक ही नहीं, अभिमानी भी हूँ। मैं अपने को इस बात का अधिकारी मान लेता हूँ कि मेरी कड़ी और कड़वी बात बिना चीं चपड़ किये सुनना दूसरे का कर्तव्य है; पर इस बात को भुला देता हूँ कि उसके भी दिल है, उसके चोट पहुँच सकती है, और मेरी बात में गलती हो सकती है। मेरे दिल को जब किसी की बात से चोट पहुँचती है तब मेरा दिल क्या कहता है ?

× × ×

यह मान लेना कि मन में जितनी बातें उपजती हैं सब सच होती हैं और जितनी हम कह या कर जाते हैं सब सच ही हैं, हमारा बड़ा भ्रम है।

× × ×

एक तो सदा सच बातें उसीके हृदय में स्फुरित होती हैं, जिसका जीवन परम सात्विक है—जो सर्वथा राग-द्वेष से हीन है, दूसरे यदि सत्य स्फुरित भी हुआ तो उसे प्रकट करने का साधन—मनुष्य का मुख या लेखनी—अपूर्ण होने के कारण, प्रकटित बात बिलकुल सत्य ही है, यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता।

× × ×

अतएव यह मानना कि सत्य तो कड़वा होता है और सदा कड़वा ही बोलना, या कटुता आती हो तो उसके प्रति लापर्वाही रखना, सत्यप्रिय मनुष्य के लिए उचित नहीं।

× × ×

(जो भाई यह कहता है कि मैं तो स्वराज्य के लिए दूसरे का खून भी पी जाऊँगा, उसे स्वराज्य का प्रेम या मोह है, स्वराज्य का ज्ञान नहीं है।)

× × ×

वह स्वराज्य एक व्यक्ति को हटाकर दूसरे व्यक्ति के लिए चाहता है, एक आदर्श को मिटाकर दूसरे आदर्श के लिए नहीं।

× × ×

जो अपनी त्रुटियों, दोषों, दुर्गुणों को नहीं देखता, वह सत्य-प्रिय कैसा? और जो अपने दोषों को देखता है वह दूसरे के प्रति अविनयी और उद्धत कैसे हो सकता है।

× × ×

विनय के मानी कमजोरी नहीं विनय का अर्थ है उच्च-हृदयता—शराफत।

× × ×

जो जितना ही विनयी होगा, उसकी वाणी और कृति में उतना ही बल, आकर्षण और प्रभाव होगा।

× × ×

गम्भीर और विवेकशील मनुष्य विनयी होता है। वह अपनेको छोटा समझता है; वह दूसरे को कड़वी बात कैसे कहेगा?

× × ×

कड़वी बात कहना एक चीज है और कड़वी लगना दूसरी चीज है। जबतक हमें यह खयाल है कि हमारी बात कड़वी लगेगी, तबतक उसका असर जरूर बुरा और उलटा होगा।

× × ×

जब मुझे दूसरे आदमी के दिल के दर्द की पर्वा नहीं है, तो उसे मेरी बात सुनने की क्यों पर्वा होगी?

× × ×

मैं उसका शुभैषी हूँ और उसके हित से प्रेरित होकर ही कड़वी बात कहता हूँ—इसका अचूक प्रमाण क्या है? मेरे हृदय की सहानुभूति, संवेदना। परन्तु सहानुभूति से आर्द्र और स्निग्ध एवं समवेदना से व्यथित हृदय से आग निकलेगी या अमृत बरसेगा?

× × ×

यह कहना कि मुझे किसीकी पर्वा नहीं है, हद दर्जे की अहम्मन्यता है। मुझे यदि किसीकी पर्वा नहीं है, तो मुझे याद रखना चाहिए कि दूसरे को भी मेरी बिलकुल पर्वा न होगी। दूसरा क्यों मेरी पर्वा करे?

× × ×

जो कभी किसीके सामने न झुकने का अभिमान रखता है, उसे कभी तिनके के सामने झुक जाना पड़ता है।

× × ×

और एक देश-सेवक यह कैसे कह सकता है कि मुझे किसीकी पर्वा नहीं है? देश-सेवा का अर्थ ही है सबकी पर्वा करना। जो जितने ही अधिक लोगों की पर्वा करता है, वह उतना ही बड़ा देश-सेवक होता है।

× × ×

जो अपने प्रति अधिक कठोर होता है, उसीके मुँह से सहानुभूति और प्रेम की मीठी वाणी निकल सकती है।

× × ×

जो वाणी में कटुता की पर्वा नहीं करता वह कृति में भी न्याय-अन्याय की विशेष पर्वा न करेगा। जो वाणी पर संयम

नहीं रख सकता, उसपर मधुरता के अच्छे संस्कार नहीं डाल सकता, वह कृति में संयमी कैसे रह सकता है ?

× × ×

स्वतन्त्रता स्वार्थ है, संयम परमार्थ—जो परमार्थ नहीं करता, उसका स्वार्थ नहीं सध सकता।

× × ×

जो स्वतन्त्रता का तो पुजारी है, पर संयम की भी उतनी ही पूजा नहीं करता है, वह स्वतन्त्रता पा नहीं सकता, पा गया तो जल्दी ही खो भी बैठेगा। संयम का अवलम्बन करने से दूसरों की स्वतन्त्रता पर वह पदाघात करेगा और दूसरे उसकी स्वतन्त्रता कायम न रहने देंगे।

× × ×

अपनी स्वतन्त्रता को कम रखकर भी जबतक मैं दूसरों को उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा का आश्वासन न दूँगा, तबतक वे मेरी स्वतन्त्रता-प्राप्ति में क्यों सहायक होंगे ?

× × ×

धन और जन की सहायता के बिना संसार में कोई काम नहीं हो सकता। और सहायकों की लहरों के प्रति उदार-भाव रक्खे बिना न धन मिल सकता है, न जन।

× × ×

व्यक्ति बड़ा है, इसलिए कि वह संस्था निर्माण करता है; और संस्था बड़ी है, इसलिए कि वह अधिक स्थायी होती है, अधिक सार्वजनिक होती है।

× × ×

असली ईश्वर-सेवा क्या है? मानव-जातिकी सेवा। सन्ध्या, उपासना, पूजा-अर्चना क्या है? मानव समाज की सेवा करने के योग्य बनने के साधन।

× × ×

स्वाभिमान की रक्षा का भाव मनुष्यत्व का आरम्भिक लक्षण है। मान-अपमान की विस्मृति मनुष्यता की पूर्णता का पूर्व-चिह्न है।

× × ×

जबतक हम बाहु-बल को ही श्रेष्ठ बल मानेंगे, तबतक हम बाहुबल से बराबर डरते रहेंगे। जबतक हिन्दू अपने को मुसलमानों से बाहुबल में हीन समझते रहेंगे और साथ ही बाहुबल को ही महान् बल मानते रहेंगे, तबतक मुसलमानों का डर उनके दिल से दूर नहीं हो सकता।

× × ×

बलवान् वह है, जिसकी आत्मा प्रसन्न और निर्भय है।

निर्भय वह है; जो किसीसे कभी डरता नहीं। डर ही औरों को डराता है।

× × ×

हिन्दुओं में धर्म-'प्रेम' तो है, पर धार्मिक 'जीवन' बहुत कम है। यही उनकी सबसे भारी कमजोरी है।

× × ×

इसका उपाय है धन और प्राण के मोह को कम करना। धर्म के लिए, धार्मिक जीवन के लिए, सदा धन और प्राण देने के लिए तैयार रहना।

× × ×

आज हम धर्म के नाम पर धन तो देते हैं, पर प्राण देना नहीं चाहते। धन भी देते हैं धर्म के उन्माद में आकर, धार्मिक वृत्ति से नहीं।

× × ×

भय को हिन्दुओं ने धर्म का शिष्ट रूप देकर हिन्दू-समाज को बोदा बना रक्खा है। यही कारण है जो गो-वध का नाम सुन कर मुसलमानों से हम लड़ मरते है, पर अंग्रेजों के सामने दुम हिलाने लगते है।

× × ×

क्या सत्य केवल दूर से पूजा करने की वस्तु है ? यदि नहीं, तो लोग झूठ बोलने वाले और बड़ी-बड़ी डींग हाँकने वालों को बड़ा आदमी क्यों मानते हैं ? यदि व्यवहार में झूठ का आश्रय लिये बिना सुख नहीं मिल सकता, तो "असत्यान्नास्ति परधर्म" जीवन का मूलमन्त्र क्यों नहीं बना दिया जाता ?

× × ×

उद्धतता और दब्बूपन दोनों कायरता के चिह्न हैं । तेजस्विता और नम्रता बल के ।

× × ×

सिद्धान्त में आग्रह और क्षुद्र लोकाचार में निराग्रह वृत्ति जीवन का बड़ा सुन्दर नियम है ।

× × ×

सचाई और कष्ट एक वस्तु की दो बाजुयें हैं । जहाँ कष्ट नहीं है वहाँ सचाई का अभाव समझना चाहिए । कष्ट सचाई की सचाई है ।

× × ×

अ-विचार से अति-विचार या कु-विचार अच्छा है । बल-शून्य से अत्याचारी अच्छा है । अ-भाव से दुर्भाव श्रेष्ठ है ।

× × ×

जो विपत्ति से डरता है उसके लिए उसकी सम्पद् भी विपद् हो जाती है। जो विपत्ति का स्वागत करता है उसके लिए विपद् सम्पद् हो रहती है।

× × ×

कायर रहने की अपेक्षा अत्याचार करना अच्छा है। अत्याचार करने से अत्याचार सहना अच्छा है। सशस्त्र प्रतीकार से निःशस्त्र प्रतीकार और भी श्रेष्ठ है।

× × ×

प्रेम का दरजा बल से अधिक है, ऊँचा है। (बल जहाँ हारता है, प्रेम वहाँ सफल होता है। बल-प्रयोग में हराने का भाव होता है; प्रेम-प्रयोग में सुधारने का।)

× × ×

संयम और स्वतन्त्रता जिस तरह एक ही सिक्के के दो बाजू हैं उसी प्रकार नम्रता और निर्भयता भी एक ही चीज़ के दो रूप हैं।

× × ×

स्वतन्त्रता में जिस प्रकार अपने अधिकारों की रक्षा की प्रतिज्ञा है और संयम में दूसरे के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन, उसी प्रकार (निर्भयता में स्वयं किसीसे न डरने की

प्रतिज्ञा और नम्रता में किसीको न डराने का आश्वासन है।

× × ×

दब्बू और जाहिल यों एक-दूसरे के विपरीत गुण रखने वाले मालूम होते हैं, पर असल में दोनों का पिण्ड एक ही है। जाहिल अपनेसे बड़े जाहिल के सामने दब्बू बन जाता है और दब्बू अपनेसे दबने वाले के लिए जाहिल बन जाता है।

× × ×

जो किसीको डराता नहीं, वास्तव में वही किसीसे डरता नहीं है। जो औरों को डरा सकता है, वह ज़रूर दूसरों से डर सकता है।

× × ×

जबतक हमारा मन सरस और नीरस, सुन्दर और अ-सुन्दर वस्तुओं में भेद करता रहता है, तबतक सूक्ष्म ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव है। और यदि सूक्ष्म पालन की उपेक्षा की गई, तो वह स्थूल की उपेक्षा किये के बराबर ही है।

× × ×

हम धन कमाने के लिए दुनिया में आये हैं या धर्म के लिए? धन चिरस्थायी है या धर्म? फिर हम धन के पीछे इतने पागल क्यों हो जाते हैं? शराबी में और धन के शराबी

में कोई भेद है ? एक धन देकर शराब पीता है, दूसरा खुद धन की ही शराब पीता है, यही न ?

× × ×

धर्म वीर है। धार्मिक, जीवन में भय और कायरता के लिए जगह नहीं। पर आज हिन्दू-समाज में वही सबसे अधिक भयभीत और बोदे नजर आते हैं, जो धर्म की दुहाई दे देकर दुनिया से अछूत बने हुए हैं।

× × ×

जीवन मुख्य है या शास्त्र ? जीवन मुख्य है या कला ? जीवन मुख्य है या सत्ता ? जीवन मुख्य है या धन ?

× × ×

यदि जीवन ही मुख्य है और दूसरी बातें गौण अथवा उसके साधन हैं तो फिर आज हम शास्त्र, कला, सत्ता और धन आदि को जीवन का गला घोंटते हुए क्यों देख रहे है ?

× × ×

ऐसा जान पड़ता है, जीवन का रस चूस-चूस कर उसके ये चौकीदार स्वयं मालिक बन बैठे है और उसे अपना असहाय कैदी बना डाला है। पेशवा जिस प्रकार शिवाजी महाराज के राज्य को हड़प गये और सिन्धिया, होलकर आदि ने

पेशवाओं को ताक पर रख दिया, उसी प्रकार शास्त्र, कला, सत्ता, धन आदि जीवन को पद-भ्रष्ट करके स्वयं ही अपने-अपने क्षेत्रों में राजा बन बैठे हैं ।।

× × ×

जीवन मर रहा है, रो रहा है; शास्त्रियों को बाल की खाल निकालने से फ़ुरसत नहीं, जीवन चूल्हे में जाय, हमारे शास्त्रों का पालन होना चाहिए; काव्य-कलानिधियों को स्वकीयाओं और परकीयाओं की मजलिस में रास-क्रीडा करने तो हमें जाना ही चाहिए, सत्ता की धौंस हमें मानना ही चाहिए, धन को झुक कर प्रणाम करना ही चाहिए ! ! !

× × ×

(जो अपनी ग़लती को खुद ही देखकर सुधार लेता है और उसका प्रायश्चित्त कर लेता है, वह साधु है; जो ग़लती बताने पर मान लेता है और खेद प्रकाशित करता है, वह सज्जन-सद्गृहस्थ है; जो ग़लती मालूम होने पर भी ज़िद करता है, वह नर-पशु है, जो सही और गलत का तमीज़ ही नहीं कर पाता, या जो ग़लत को सही और सही को ग़लत मानता है, वह पशु है ।)

× × ×

अपमान का भाव अहंकार का सूक्ष्म और सुप्त रूप है। जबतक मनुष्य अपने को बड़ा समझता है तबतक उसकी आत्मिक उन्नति की शुरुआत नहीं हुई है। जब वह अपने को सबसे छोटा अतएव नम्र समझने लगता है तब आध्यात्मिक प्रगति का आरम्भ समझना चाहिए।

× × ×

भोला पुरुष ईश्वर का बालक है। उसका भोलापन ही उसकी ढाल बन जाता है।

× × ×

आत्म निन्दा आत्म-स्तुति का संशोधित स्वरूप है।

× × ×

ज्यों-ज्यों मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल और निष्पाप होता जाता है त्यों-त्यों उसे अपने छोटे दोष भी बड़े दिखाई देने लगते हैं और अपने दोषों की स्वीकृति से उसके चित्त को बड़ा समाधान होता है। वह अपने प्रति कठोर और दूसरों के प्रति उदार होता जाता है।

× × ×

शरीर की निर्मलता सच्ची और काफी निर्मलता नहीं—मन की निर्मलता ही सच्ची निर्मलता है।

× × ×

मन बड़ा चंचल है। जबतक वह चंचल होता है तबतक सहसा उसकी चंचलता का अनुभव नहीं होता। जब उसपर कुछ कब्जा होने लगता है तब उसकी चंचलता और चंचलता की भयङ्करता मालूम होने लगती है। ओफ! वह कभी-कभी कैसे घृणित और मलिन विचार भी करने लगता है!

× × ×

कबीर ने सच कहा है—

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
तन का मन का छोड़िके, मन का मनका फेर॥

× × ×

जब मनुष्य शरीर का विचार करने लगता है तब वह तन्दुरुस्त होने लगता है, जब मन का विचार करने लगता है तब पुरुषार्थी होने लगता है।

× × ×

संसार महापुरुषों का फुटबाल है। एक उसे एक सिरे से

धक्का देता है तो दूसरा आकर दूसरे सिरे से । वह एक सिरे से दूसरे सिरे पर नाचा करता है—मध्यस्थ नहीं रहता ।

× × ×

संसार महापुरुषों की प्रयोग-शाला है । भिन्न-भिन्न समाज और देश उसके प्रयोग-पदार्थ हैं । इन प्रयोगों के द्वारा वह संसार के रोगों और दुःखों की दवा करता है । यदि किसी समाज या देश को इन प्रयोगों के लिए कष्ट सहना पड़े या हानि उठाना पड़े तो 'कुलस्यार्थे त्यजेदकम्' के न्याय के अनुसार उसे अपनी कुरबानी पर सन्तोष मानना चाहिए ।

× × ×

केवल बौद्धिक शिक्षा पर अधिक जोर देने से केवल बौद्धिक उन्नति से मनुष्य के हृदय के गुणों का—भावनाओं का विकास नहीं होता । केवल भावनाओं का पोषण करने से समाज में अज्ञान बढ़ता है । केवल तर्क अनर्थकारी है, अप्रतिष्ठित है । केवल भावना अन्धी है । अतएव ऐसा नियम बनाना चाहिए कि जो तर्क भावनाओं का घातक हो वह दुष्ट है, जो भावना तर्क की शत्रु हो वह अनिष्ट है ।

× × ×

संसार में जितनी बातें गोपनीय और गुह्य मानी जाती हैं

उनका मूल कारण अ-संयम है । छिपाव से हम जितना ही परहेज करेंगे उतना ही सयम बढ़ेगा । जितना ही हम संयमी होंगे उतना ही छिपाव कम होगा । परदे का रिवाज हमारे असयम का ढिंढोरा दुनिया में पीटता है ।

× × ×

रामायण में राम और सीता की कथा हो न हो कपोल-कल्पित है । क्योंकि भारत के वर्तमान विख्यात पुरुषों का दाम्पत्य-जीवन शायद ही ऐसा सुखमय हो । ये घर में भी दुःखी रहते हैं । फिर सीता-राम वन में भी सुखी कैसे रह सकते थे ?

× × ×

आर्य-साहित्य में दाम्पत्य-धर्म की बड़ी महिमा गाई गई है । लक्ष्मी-नारायण, गौरी-शंकर, सीता-राम इन आदर्श दाम्पतियों की सृष्टि कहीं इस बात का तो सबूत नहीं है कि प्राचीन काल में भी, आज की तरह, दाम्पत्य-जीवन प्रायः क्लेश-मय था ? क्योंकि समाज में जिस बात का अभाव होता है उसीकी पूर्ति के योग्य आदर्श की सृष्टि समाज-नेता करते हैं ।

× × ×

जितना ही बाहरी आडम्बर अधिक हो उतना ही समझना

चाहिए कि यहाँ दाल में काला है । जो अपने माल की हद से ज्यादा तारीफ करता है, बराबर तारीफ ही करता रहता है, वह चीज दिखाई चाहे कितनी ही अच्छी देती हो, उसे लेते समय सावधान रहना चाहिए ।

× × ×

(जहाँ सादगी है वहाँ धर्म है, वहाँ सेवा-भाव है । जहाँ शृंगार है, चमक-दमक है, वहाँ दूकानदारी है ।)

× × ×

पतिव्रता अपने हृदय को सद्गुणों से सजाती है । कुलटा अपने शरीर को चटकीले वस्त्राभूषणों से ।

× × ×

वेश्याओं को सब कोसते हैं । पर वेश्यागामी मूछें मरोड़ कर समाज में घूमते हैं । यह न्याय तो देखिए !

× × ×

व्यभिचार और वेश्या-वृत्ति की वृद्धि के जिम्मेवार तो हैं पुरुष; पर वे ही समाज में इन 'पतित बहनों' पर प्रहार करते हैं ? इस निष्ठुरता, इस बेशर्मी का कुछ ठिकाना है ?

× × ×

एक तो पुरुष ने 'शक्ति' को 'अबला' बना दिया । फिर

उन अबलाओं पर अत्याचार करता है और अपने इस पराक्रम पर फूला फिरता है । इस पाजीपन को सहन करने वाला परमात्मा क्या न्यायकारी है ?

× × ×

यदि संसार में स्त्री-राज्य हो जाय तो पुरुषों के इस अपराध के लिए उन्हें क्या दण्ड देना चाहिए ? यदि मैं स्त्री होता तो प्रस्ताव करता कि अबकी बार 'माफी' बख्शी जाय । पर मैं तो हूँ पुरुष । अतएव तजवीज पेश करूँगा कि पुरुष बतौर प्रायश्चित्त के उतने ही दिनों तक उसी तरह स्त्रियों की खिदमत करें, जिस तरह आज स्त्रियों से वे ले रहे हैं ।

× × ×

क्या आदर्श और व्यवहार में पूरब-पच्छिम का नाता है ? क्या आदर्श कोरी पूजने की वस्तु है ?

× × ×

जिस आदर्श के अनुसार व्यवहार करने का प्रयत्न न होता हो, वह आदर्श मिथ्या है; जिस व्यवहार को आदर्श प्रेरित और अनुप्राणित न करता हो, वह भयङ्कर है ।

× × ×

व्यवहार से आदर्शवादी उदासीन या विरक्त नहीं होता;

व्यवहार और आदर्श में जहाँ विरोध खड़ा हो जाता है वहाँ वह कष्ट सहकर भी आदर्श के अनुसार व्यवहार करने की कोशिश करता है। अपने को व्यवहार-वादी समझने वाले ऐसे समय में दुम दबा लेना बुद्धिमानी समझते हैं । आदर्शवादी इसीको कमज़ोरी कहते हैं।

× × ×

प्रेम का मार्ग विचित्र है। कभी फूलों का सा कोमल होता है तो कभी कण्टकों से परिपूर्ण । कभी सड़क मिलती है तो कभी गहरी सीधी खाई। और प्रेम के उम्मीदवार को परमात्मा का स्मरण कर इन में आँखें मूँद कर कूद जाना पड़ता है । आन्तरिक निर्मलता को सिद्ध करने के लिए संसार में ऐसी वस्तु ही नहीं जो सच्चे प्रेमी के लिए असम्भव हो।

× × ×

एक सच्चे आदमी को कोई मूर्ख कह दे तो इतना दुःख नहीं होगा जितना किसी के उसे अप्रामाणिक या कपटी कहने से होगा। बुद्धि परमात्मा की देन है; परन्तु हृदय की निर्मलता तो प्रत्येक मनुष्य की सम्पत्ति है न?

× × ×

विष की कभी खाकर परीक्षा न कीजिए। 'शठे शाठ्यम्'

दोनों को गिराता है । चाहे इस नियम का उपयोग करने वाला कितनी ही अपनी पवित्रता तथा होशियारी की डींग मारे।

× × ×

जो बात उचित है, उसे करने की अपेक्षा जो बात अच्छी लगती है, उसे करने की चेष्टा हम क्यों करते हैं ? इसलिए कि हमें पुरुषार्थ से प्रेम नहीं है बल्कि हमारा मन विषय-विलास का पिपासु है।

× × ×

ज़ालिम के जैसा कायर नहीं, और मज़लूम के जैसा ज़ालिम नहीं।

× × ×

हमारे देश में एक दल बड़ा आशावादी है। और तो ठीक वह आशा की कल्पना भी उसके जीवन के लिए काफी होती है। बरकन हेड साहब ने दुत्कार दिया तो क्या हुआ, लार्ड रीडिंग आकर कुछ न कुछ ज़रूर देंगे। अफ़सोस। हमें ईश्वर ने ऐसी आशा-वादिता न दी—नहीं तो इस चरखे के चक्कर से बच जाते।

× × ×

भले आदमी इतना नहीं सोचते कि किसी के हाथ देया

करने से कोई अपना जन्मजात हक भी छोड़ सकता है ?

× × ×

'तपान्ते राज्यम्; राज्यान्ते नरकम्'

इस सूत्र की रचना करने वाला भविष्य-दर्शी था। हमारे कितने ही देशी-रजवाड़ों का भविष्य उसने बहुत पहले देख लिया था।

× × ×

हिन्दुस्तान अब व्यापार में अंग्रेजों को शीघ्र ही पछाड़ देगा। क्योंकि 'विज्ञापन-बाजी' जैसे बिना पूंजी के आमदनी-रोजगार का क्षेत्र उसके हाथ लग गया है।

× × ×

हिन्दी-संसार में विज्ञापन-बाजी की बीमारी बेतरह बढ़ रही है। किसी तरह ग्राहकों को लुभाना अधर्म नहीं समझा जा रहा है। अत्युक्ति, असत्य और अन्त में धोखे-बाजी तक से कहीं-कहीं काम लिया जाता है। यह देश के दुर्भाग्य का लक्षण है। यह देश और साहित्य की उन्नति के नाम पर उसकी अवनति करने का प्रयत्न है।

× × ×

को नीति, ज्ञान, धर्म और अच्छी बातें सिखाते हैं, दूसरी ओर कितने ही अनुचित और अनावश्यक ही नहीं बल्कि स्पष्टतः हानिकर विज्ञापनों के द्वारा उन्हीं बातों के विपरीत आचरण करने की प्रेरणा करते हैं। यह सती और वेश्या का सङ्गम देश में बड़ा अनर्थ कर रहा है। खेद है, हमारी आँखें नहीं खुलतीं।

× × ×

इससे बढ़कर खेद इस बात का है कि हमारी अच्छी से अच्छी पत्र-पत्रिकायें अपने निर्वाह के लिए विज्ञापनों का सहारा लेने पर मजबूर होती हैं। हम आँखें मूँद कर पश्चिमी अखबार-नवीसी का अनुकरण कर रहे हैं। अपने देश की सभ्यता, संस्कृति और प्रकृति की विशेषता को भुला देते हैं। यदि हम अपनी पत्र-पत्रिकाओं में से बहुत-सी निरर्थक बातें निकाल दें, तो हम इस अनीति-मूलक काम से बहुत कुछ बच सकते हैं।

× × ×

(व्यापार का असली उद्देश्य था जीवन के लिए आवश्यक और उपयोगी चीजों को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना।) इसका जो पारिश्रमिक व्यापारी लेता था वही उसका मुनाफा

था। अब मुनाफ़ा व्यापार का उद्देश्य हो गया है। 'सुख पहुँ-चाने' के बजाय 'लूटना' धर्म हो गया है।

× × ×

अब व्यापार 'जरूरत' के लिए नहीं होता, 'लालच' के लिए होता है। माँग की पूर्ति नहीं की जाती है, बल्कि नई-नई माँगें उत्पन्न की जाती हैं। रोग की दवा नहीं करते, बल्कि नये रोग पैदा करते हैं।

× × ×

अब साहित्य और ज्ञान का भी व्यापार होने लगा है। उसकी भी कम्पनियाँ खुलती हैं, 'शेअर्स' रक्खे जाते हैं। 'कन्याओं' का व्यापार तो कितने ही 'व्यापारियों' के यहाँ होता है। अब आगे किनका? माता-पिताओं का? या—?

× × ×

साहित्य के व्यापारी साहित्य के व्यापार को ऊँचे दरजे का व्यापार समझते हैं। होगा। मेरी मंद-मति में तो जो वस्तु जितनी ही पवित्र होती है उतना ही उसका व्यापार नीचे दरजे का होता है।

× × ×

देश में फ़ैशन और भोग-विलास को बढ़ाने में हमारे

विज्ञापनों ने जितना योग दिया है उतना ही पाप के भागी हम सम्पादक और प्रकाशक लोग हुए हैं।

× × ×

लेखकों ने लेख और पुस्तकें लिख मारना और प्रकाशकों ने पुस्तकें छपा डालना अपना पेशा बना लिया है। ग्राहकों की भोग और विलास-वृत्ति को जाग्रत करके तरह-तरह की आकर्षक, चटकीली, चुह चुहाती, रँगीली-रसीली बातें उनके सामने रख-रख के—बहुतेरे अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। उन्हीं के पैसे से उन्हीं के अध.पात का नुस्खा उन्हें दे रहे हैं।

× × ×

लेखक ज्ञान-दान करने के लिए कलम नहीं उठाता प्रकाशक ज्ञान-प्रचार के लिए पुस्तकें नहीं छपाता। एक को पेट की पूजा करनी है, दूसरे को अपनी जेब की फिक्र है। सच्चे सेवक कम हैं।

× × ×

आश्रम की एक विधवा बहन के लिए मैंने भर्तृहरि के वैराग्य शतक की एक पुस्तक मँगवाई। ५) की वी० पी० आई। मैंने एक रोज सहज पूछा वैराग्य शतक आ गया? उसने भोले-भाव से उत्तर दिया—'हाँ, बड़ी फेन्सी किताब

है। ५) में आई।' मैं चौंका। 'सिर्फ वैराग्यशतक और ५) कीमत!' पुस्तक की जिल्द जो देखी तो मुझे भ्रम हुआ कि कहीं यह शृंगार शतक तो नहीं आ गया!

× × ×

मैं पुस्तक को अन्दर टटोलने लगा। उसके बीसों चित्रों पर मेरी नज़र पड़ी। मेरा कलेजा काँप उठा। यह वैराग्य शतक है, या शृंगार का सिनेमा है?

× × ×

जब वैराग्य शतक का यह हाल है, तब शृंगार शतक न जाने क्या गजब ढहाता होगा?

× × ×

अब मैं पुस्तक पढ़ने लगा। मेरी ग्लानि की सीमा न रही। लेखक ने स्त्रियों पर जो अनुचित और अनुदार आक्षेप किये हैं, जो उनकी निन्दनीय निन्दा की है, उसे देख कर मेरा खून उबलने लगा। स्त्री-जाति पर सदा से अन्याय करने वाला पुरुष किस मुँह से स्त्रियों को कोस सकता है?

× × ×

पुस्तक के कितने ही गन्दे चित्र मैंने फाड़ डाले जिन पन्नों में लेखक ने स्त्रियों पर वमन किया था, उनमें से बहुतेरे पन्ने

सी डाले, तब उस पुस्तक को मैंने उस बहन के पास रहने लायक समझा। ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करने की धृष्टता करना साहित्य-प्रेमियों की सुरुचि का अपमान करना है। इस पुस्तक को इस रूप में प्रकाशित करके प्रकाशक ने भर्तृहरि का अक्षम्य अपराध किया है।

× × ×

हमारा समाज इन बेजाइयतों और बेहूदगियों को क्यों सहन करता है? उसे पहचान ही नहीं है, या उसकी मति बिगड़ गई है?

× × ×

साहित्य के समालोचक अतिरथी-महारथी क्यों चुप हैं? वे स्वयं भी मोह-माया में ग्रस्त हैं या उनकी हिम्मत पस्त हो गई है?

× × ×

हिन्दी में एक 'भंगी'—पत्र की बहुत जरूरत है। अछूत-पन दूर करने के लिए तो एक महाभंगी का अवतार हो चुका है। भगवन् हिन्दी साहित्य में भी कोई ऐसा जबर्दस्त भंगी भेजो जो अपनी झाड़ू से तमाम मैला साफ कर दे, साफ करता रहे।

× × ×

होली के दिनों में हम सम्पादकों को भी मस्ती क्यों चढ़ती है ? क्या इसलिए कि वह ग्यारह महीने परदे में रहती है ?

× × ×

भंग-भवानी की सत्ता अपार है। तीर्थ के हट्टे-कट्टे पण्डों-पुरोहितों पर ही नहीं, कितने ही मन के मज़बूत साहित्य-सेवियों पर भी उसकी ख़ूब सत्ता चलती है। नहीं, उसीके सहारे वे अपने मन को मज़बूत बनाते हैं।

× × ×

क्या स्त्रियाँ मातायें हैं ? होंगी—'हवाई फिलासफरों' के यहाँ—आदर्श की भंग पीने वालों के यहाँ; हम व्यवहारी लोगों के अनुभव में तो वे माता पीछे होती हैं, फिर भी सभी नहीं होतीं।

× × ×

और हमारे रँगीले-रसीले साहित्य-काव्य-प्रेमियों के नज़दीक तो स्त्रियाँ, अपने अनेक भेद-प्रभेद-सहित नायिकायें हैं। उनके बिना रस ही क्या और रस के बिना कविता ही क्या ?

× × ×

हम भारतवासियों की धुन की भी बलिहारी है । स्वराज्य चाहे रक्खा रहे, पर हमारा काम-शास्त्र का विद्यालय पहले खुले ।

× × ×

"अजी क्या अश्लीलता अश्लीलता मचा रक्खी है ? क्या तुम्हारे शरीर में अश्लीलता नहीं है ? क्या तुम खुद अश्लील माने जाने वाले काम नहीं करते ? फिर क्यों अश्लीलता के गीत गाते हो ? जो तुम एकान्त में करते हो वह दस लोगों के सामने करने में क्या हर्ज है ? उसका प्रचार करने में कौन पाप है ? उसकी शिक्षा देना कौन अधर्म है ?"

× × ×

जो बातें घृणित हैं, जिनकी कल्पना मात्र हमारे सुसंस्कृत और सुरुचि-सम्पन्न मन को असह्य होना चाहिए, उन्हींको हमने कला, सौन्दर्य आदि कैसे शिष्ट और भव्य नाम दिये हैं ! मनुष्य, इन्द्रियाधीनता का छिपा हाथ तुझसे क्या नहीं करा सकता ?

× × ×

दुनिया में क्या गंदगी की कमी है जो हम उसे और फैलावें ?

× × ×

मेरे एक मान्य साहित्य-रसिक गुजराती मित्र "मतवाला" के बड़े भक्त थे। उनके लिए याद रखकर मैं 'मतवाला' को सम्हाल रखता था। लेकिन जबसे उन्होंने उसका 'होलिका-अंक' तथा उसके बाद 'अवशिष्ट' होलिका-अंक पढ़ा तबसे उन्होंने 'मतवाला' का नाम न लिया। श्रीवास्तवजी और गोस्वामीजी के होली के रूप को देखकर कहीं उनकी सुसंस्कृत आत्मा और परिष्कृत रुचि को 'फ़िट' तो नहीं आ गया ?

× × ×

"प्रभा" को किसीने हिन्दी-साहित्य की 'संन्यासिनी' कहा था। मुझे यह उसकी स्तुति मालूम हुई थी। मालूम होता है 'प्रभा' इससे सहमत नहीं। कहीं इसका मुँहतोड़ जवाब देने के ही लिए तो वह अप्रैल में एक हाथ में 'ग्रीष्म-युवती' और दूसरे में डंके की चोट 'नामर्दी की अचूक औषधि' और 'नामर्दी का अद्भुत तिला' लेकर उपस्थित नहीं हुई है ?

× × ×

'मतवाला' मनुष्य का तो समाज बहिष्कार करता है; पर 'मतवाला' पत्र को शिरोधार्य करता है। क्या पहले से दूसरा समाज की अधिक सेवा करता है ? इसीको कहते हैं "रुचीना वैचित्र्यम्"

× × ×

एक मित्र ने उस दिन कहा—जी, आजकल लोगों को बात-बात में अश्लीलता की बू आ जाया करती है। एक चित्र में कृष्ण पीछे से गोपी का पल्ला पकड़ रहे हैं। बस, होने लगी पुकार अश्लीलता की! मैंने अर्ज़ किया—जनाब! कृष्ण को क्या पड़ी थी, जो किसी राह-चलती गोपी का पल्ला पकड़ते—उससे छेड़खानी करते? और इस छेड़खानी के रस के सिवाय कौनसा आकर्षण उसमें था, जिसके वशवर्ती होकर सम्पादकजी ने उसे पत्रिका में स्थान दिया?

× × ×

हिन्दी-साहित्य में अभी उत्साह है—यौवनारम्भ की उमंग है। संयत यौवन ही सफल यौवन हो सकता है। सफल यौवन बुढ़ापे के सौख्य का पूर्वचिह्न है।

× × ×

हिन्दी-साहित्य का सख्या-बल बढ़ता जा रहा है। यह हर्ष की बात है। पर यह सुचिह्न तभी होगा जब, गुण-बल भी बढ़ने लगेगा।

× × ×

(विवेचना और आलोचना-शक्ति प्रौढ़ और पुष्ट दिमाग़ का लक्षण है और निर्दोष विनोद नीरोग प्रतिभा का। छिद्रा-

न्वेषण, कटुता-पूर्ण आक्षेप, विपाक्त व्यङ्ग्य विकृत-बुद्धि का नग्न-नृत्य है।

× × ×

हिन्दी-साहित्य अभी अनुवाद-युग में से गुजर रहा है। क्या यह 'परप्रत्ययनेय बुद्धि' का लक्षण नहीं है ? कोई इसका उत्तर दे सकता है—"विनाश्रयेण शोभन्ते पंडिताः वनिता, लता।" कहीं हिन्दी के पण्डित वनिता और लता की पंक्ति में अपना अपमान तो न समझें ! नहीं जी, इनके बीच में वे तो अपने को बड़-भागी मानेंगे।

× × ×

अंग्रेजी कवियों के छन्दों को जब पढ़ने लगते है तो ऐसा मालूम होता है मानों पहाड़ी चश्मे उछलते और छलकते हुए दौड़ रहे हैं। भारतीय कवियों के छन्द ऐसे मालूम होते हैं मानों गङ्गा में किश्ती पर बैठे हुए बह रहे हैं।

× × ×

प्रतिभा की कुञ्जी है नशा; क्योंकि हिन्दी के कितने ही लेखक, सम्पादक, कवि जबतक किसी तरह के नशे का सेवन नहीं करते तबतक प्रतिभा उनसे रूठी रहती है। साहित्य-सेवी के लिए शायद सच्चरित्रता का त्याग—और अधिकांश

में केवल परोपदेश काफी है । ऐसा न हो तो सदाचारी को दर-दर दौड़ना क्यों पड़े और दुराचारी का बोलबाला क्यों हो ? न मानों तो आजमा कर देख लीजिए ।

× × ×

कला का अर्थ है सृष्टि; शास्त्र का अर्थ है चीर-फाड़ । कला का अर्थ है हृदय; शास्त्र का अर्थ है बुद्धि । कला का अर्थ है सौन्दर्य; शास्त्र का अर्थ है उपयोग । कला का अर्थ है संयोग; शास्त्र का अर्थ है वियोग ।

× × ×

वनिता ईश्वर की कविता है । कविता कवि की वनिता है । लता, कविता और वनिता दोनों की सहकारिता है ।

× × ×

कालिदास की काव्य-सृष्टि मनोरमा है, मोहिनी है । भवभूति की काव्य-कृति साध्वी और पवित्र । कालिदास का दुष्यन्त जब शकुन्तला पर प्रेमासक्त होता है, दोनों की हत्तन्त्री से संवादी स्वर की झंकार निकलने लगती है, तब पाठक को अपने हृदय के कल-पुर्जों पर पहरा बिठा देना पड़ता है, लेकिन जब भवभूति का राम 'गाल पर गाल रखकर बातचीत' करने तक की बात कह जाता है तब भी पाठक की आँखों में

आँसू ही छलछलाये रहते हैं। शकुन्तला का अनुराग व्यामोहकारी है; उत्तर-रामचरित का करुणा-शृंगार अन्तर्वृत्ति को जाग्रत और स्वच्छ कर देता है।

× × ×

वाल्मीकि-रामायण कला-सृष्टि है; तुलसी का रामचरित-मानस भक्ति-भागीरथी।

× × ×

देव, पदमाकर और बिहारी ने नायिकाओं के ही पीछे अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर दी। तुलसी-सूर भाव-सौन्दर्य के भक्त थे; देव, पदमाकर, बिहारी रूप-सौन्दर्य पर क़ुरबान हो गये।

× × ×

कुछ लोगों की शिकायत है कि खड़ी बोली 'करकसा' ने ब्रज-भाषा सुकुमारी को पद-भ्रष्ट करके हिन्दी-समाज को फँसा लिया है। घायल हरिणी ब्रज-भाषा की मन्द करुण चीख़ उसके कुछ सहृदय मित्रों ने सुनी। वे नज़ाक़त के नाम पर उसकी अपील करने लगे। खड़ी बोली ने संस्कृत-माता को गवाही के लिए बुलाया। मामला बिगड़ता देख पं० रामनरेश त्रिपाठी समझौते के लिए "कवि-कौमुदी" को लाये हैं। दोनों

में केवल परोपदेश काफी है । ऐसा न हो तो सदाचारी को दर-दर दौड़ना क्यों पड़े और दुराचारी का बोलबाला क्यों हो ? न मानों तो आजमा कर देख लीजिए।

× × ×

कला का अर्थ है सृष्टि; शास्त्र का अर्थ है चीर-फाड़ । कला का अर्थ है हृदय; शास्त्र का अर्थ है बुद्धि । कला का अर्थ है सौन्दर्य; शास्त्र का अर्थ है उपयोग । कला का अर्थ है संयोग, शास्त्र का अर्थ है वियोग।

× × ×

वनिता ईश्वर की कविता है। कविता कवि की वनिता है। लता, कविता और वनिता दोनों की सहकारिता है।

× × ×

कालिदास की काव्य-सृष्टि मनोरमा है, मोहिनी है। भवभूति की काव्य-कृति साध्वी और पवित्र । कालिदास का दुष्यन्त जब शकुन्तला पर प्रेमासक्त होता है, दोनों की हृत्तन्त्री से संवादी स्वर की झंकार निकलने लगती है, तब पाठक को अपने हृदय के कल-पुर्जों पर पहरा बिठा देना पड़ता है; लेकिन जब भवभूति का राम 'गाल पर गाल रखकर बातचीत' करने तक की बात कह जाता है तब भी पाठक की आँखों में

सू ही छलछलाये रहते हैं। शकुन्तला का अनुराग व्यामो-
ारी है; उत्तर-रामचरित का करुणा-शृंगार अन्तर्वृत्ति को
...मत और स्वच्छ कर देता है।

× × ×

वाल्मीकि-रामायण कला-सृष्टि है; तुलसी का रामचरित-
मानस भक्ति-भागीरथी।

× × ×

देव, पदमाकर और विहारी ने नायिकाओं के ही पीछे
अपनी जिन्दगी बरबाद कर दी। तुलसी-सूर भाव-सौन्दर्य के
भक्त थे; देव, पदमाकर, विहारी रूप-सौन्दर्य पर कुरबान
हो गये।

× × ×

कुछ लोगों की शिकायत है कि खड़ी बोली 'करकसा'
ने ब्रज-भाषा सुकुमारी को पद-भ्रष्ट करके हिन्दी-समाज को
फँसा लिया है। घायल हरिणी ब्रज-भाषा की मन्द करुण
चीख उसके कुछ सहृदय मित्रों ने सुनी। वे नजाकत के नाम
पर उसकी अपील करने लगे। खड़ी बोली ने संस्कृत-माता को
गवाही के लिए बुलाया। मामला बिगड़ता देख पं० रामनरेश
त्रिपाठी समझौते के लिए "कवि-कौमुदी" को लाये हैं। दोनों

दल को राजी करने का कठिन कर्त्तव्य उसने अंगीकार किया है। परमात्मा उसकी लाज रक्खें !

× × ×

कुछ लोग जल-भुन कर कहते हैं कि हिन्दी में अब दिन-दूने रात-चौगुने कवि हो गये हैं। आशु, अनर्गल, उद्दण्ड, उद्भट, सभी तरह के कवि नित्य जन्म ले रहे हैं। उन्हें यह भी शिकायत है कि इनके माता-पिता यदि नहीं तो पालक बहुतेरे सम्पादक होते हैं। मेरी राय में उन्हें पहले खुद परमेश्वर की आदत दुरुस्त करना चाहिए, जो हर बरसात में केंचुए और मेंढक पैदा करता है और जबतक उसका स्वार्थ रहता है तबतक उनका पालन पोषण करता है !

× × ×

कुछ लोग बड़े हलके दिल से कहा करते हैं कि गाँधीजी के अनुयायियों में बुद्धि का अभाव होता है। तभी तो गाँधीजी जिधर हाँकते हैं उधर चले जाते हैं। मैं कहता हूँ—हाँ, उनमें अधिक तो नहीं सिर्फ इतना ही बुद्धि है कि गांधीजी जैसी विश्व-विभूति को पहचान सकते हैं और उनकी क़द्र कर सकते हैं।

× × ×

क्या अटल विश्वास के साथ, प्रलोभनों को ठुकराते हुए, शाबाशी से मुँह मोड़ते हुए, ग़रीबी की ज़िन्दगी बसर करते हुए, मज़दूरों की तरह देश का काम करना—पुख़्ता काम करना, सच्चे सैनिक की तरह सेना में एकत्रता, अनुशासन और आज्ञा पालन के नियमों का पालन करना बुद्धि-हीनता का लक्षण है? और क्या केवल बातें करना, कोरी नुक्ता-चीनी करना, खाली लेख लिखना ही बुद्धि का लक्षण है?

× × ×

एक मित्र ने कहा—'भाई, आश्रम में रहने के बाद, देखता हूँ कि तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति अच्छी हुई है।' मैंने उत्तर दिया—'मेरा हाल मेरे माँ-बाप, भाई, पत्नी से पूछो। सामाजिक रूप मनुष्य का सच्चा रूप नहीं होता। उसका असली रूप कुटुम्ब में दिखाई पड़ता है।'

× × ×

बहुधा लोग समझते हैं कि अप्रिय सत्य बोलने वाले विरले ही होते हैं। मेरा अनुभव है कि प्रिय सत्य बोलना ही अधिक कठिन है।

× × ×

मनुष्य ज्यों-ज्यों सत्य के नज़दीक पहुँचता जाता है त्यों-

त्यों उसके हृदय की मृदुता और वाणी की मिठास बढ़ती जाती है।

× × ×

मेरे एक देहाती मित्र ने कहा, शास्त्री महाराज क्या हैं— अनाज के कोठी-कनगे हैं जिनमें ज्ञान का नाज तो आकण्ठ भरा रहता है लेकिन वह उनके नहीं, लोगों के उपयोग के लिए होता है।

× × ×

यह आदर्श मनुष्य के पतन का मूल कारण है कि मुझे काम तो कम से कम करना पड़े और पैसा खूब मिले। ऐसे आदर्शवादी अक्सर समाज के चोर हैं जो समाज की सेवा तो लेना चाहते हैं लेकिन उसके लिए स्वयं बहुत कम करना चाहते हैं।

× × ×

जयंति क्या है ? किसी महापुरुष के दिव्य जन्म-कर्म के उद्देश्य का हमारे हृदय में उदय होना और उसकी खुशी।

× × ×

पामर मनुष्यों के जन्म-दिन की खुशी को हम 'जयन्ति' नाम नहीं दे सकते। हमारी जन्म-ग्रन्थि का दिन तो अनि-

यन्त्रित विलास और असीम खान-पान का दिन होता है। शायद उसके मूल में यह भावना तो न हो कि ग़नीमत है एक साल तो कटा।

× × ×

सामान्य मनुष्यों की जन्म-ग्रन्थि के दिन खुशी और उत्सव मनाना बहुत हानिकर है। अज्ञानी आत्मायें इससे दिशा को भूल जाती हैं। नरेशों की जन्म-ग्रन्थि उत्सवों से सैकड़ों उदाहरणों में लाभ के बदले हानि ही होती है।

× × ×

अगर मैं परमात्मा हो जाऊँ तो संसार के नरेशों के हृदय में बैठकर यह प्रेरणा करूँ:—

वत्स, अपने इष्ट-मित्रों और प्रजाजनों से कह कि मेरी जन्म-ग्रन्थि के इतने उत्सव और खुशी मनाने से आपको क्या लाभ होगा? मैं भी तो आपके ही जैसा मनुष्य हूँ। जाओ, किसी महापुरुष के चरणों में अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करो। उसकी पूजा करो। उससे आपको स्फूर्ति मिलेगी। इस प्रकार अन्धे होकर मेरी पूजा करने से हम दोनों का पतन होगा।

× × ×

अगर मैं राजगुरु हो जाऊँ तो राजाओं से कहूँ:—वत्स, आज से तुम्हें अगले वर्ष के लिए व्रतस्थ होना है। तमाम प्रजाजनों से कह दो कि वे आज शुचिर्भूत होकर प्रार्थना करें। तुम भी संयम पूर्वक रहो और परमात्मा से प्रार्थना करो कि, "हे सर्वशक्तिमन् ये आपके मुझ पर अनंत उपकार हैं कि आपने मुझे इतना भाग्यशाली बनाया है और भूत मात्र की सेवा करने के लिए इतने साधन आपने मुझे दे रक्खे हैं। पर परमात्मन् मैं एक साधारण मनुष्य हूँ। मुझसे जो कुछ अप-राध हुए होंगे उन्हें क्षमा कीजिए और अब इतना बल और पौरुष दीजिए कि मैं अपने कर्तव्यों का यथावत् पालन कर सकूँ।"

× × ×

आजकल हिन्दू-मुसलमानों में "आरती और बाजों" पर कई दंगे हो जाते हैं। क्या आरती और बाजे सचमुच इतने हानिकर हैं? और साथ ही क्या वे सचमुच हमारे धर्म के आवश्यक अंग हैं?

× × ×

मैं कई बार दूसरों के दोषों को देख-देख कर दुःखित होता हूँ और उपदेश करने लग जाता हूँ। कभी यह कहते-

कहते थक भी जाता हूँ, पर विमार्गी प्रतिपक्षी को राह पर लाने में समर्थ नहीं हो पाया हूँ।

× × ×

पर दूसरे ही क्षण मैं अपने अन्दर देखने जाता हूँ, और क्या देखता हूँ ? खुद मेरे ही अन्दर सैकड़ों दोष भरे पड़े हैं। मैं लज्जा के मारे झुक जाता हूँ । भीतर से एक छोटी सी आवाज कहती है, "पहले इन अपनी अपूर्णताओं को दूर करने के उद्योग में लग। जैसे-जैसे तेरा हृदय निर्मल-शुद्ध-पवित्र होता जायगा वैसे ही वैसे तेरे चेहरे पर एक अलौकिक तेज का आविर्भाव होता जायगा। तब तुझे न किसी के दोष देखने पड़ेंगे और न उपदेश के लिए बुलन्द आवाज उठानी होगी। लोग तेरे सम्पर्क में आते ही अपने दोष देखने और चुपचाप उनके सुधार के मार्ग में लग जावेंगे।"

× × ×

मृत्यु का भय हिन्दुओं का सबसे बड़ा भय है। यही भय उन्हें मुसलमानों से डराता है। हम धर्म को चाहे खो दें, पर प्राण को कंजूस की तरह छिपा कर रखना जानते हैं।

× × ×

मुसलमानों की जहालत उनका बल नहीं कमजोरी है ।

हिन्दू यदि उसका अनुकरण करेंगे तो मुसलमानों से भी बदतर हो जायँगे।

× × ×

यदि मैं स्वयं कट्टर धार्मिक हूँ, और मानता हूँ कि धार्मिक कट्टरता अच्छी चीज़ है तो मुझे अन्य धर्म के कट्टर लोगों का आदर करना चाहिए।

× × ×

यदि मेरा अपनी चोटी पर अभिमान रखना बुरा नहीं है तो मुसलमान का अपनी दाढ़ी पर नाज़ करना क्यों बुरा है?

× × ×

यदि मुसलमान सारी दुनिया में फैल जाना चाहते हैं तो हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करने की अभिलाषा करने वाला उन्हें बुरा क्यों मालूम होना चाहिए?

× × ×

यदि सब मुसलमान मिट कर हिन्दू हो जायँ, या हिन्दू मिट कर मुसलमान बन जायँ तो क्या यह हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य होगा? मेरी राय में हिन्दू-मुसलिम-एकता उसी को कह सकते

है जब एक कट्टर हिन्दू और एक कट्टर मुसलमान अपने-अपने मतों पर दृढ़ रहते हुए भी आपस में एक हों।

× × ×

यदि हिन्दू फ़ाक़ेकशी करने वाले और आवारा मुसलमानों को हिन्दू बना लें तो क्या हिन्दू-धर्म का उद्धार हो जायगा? क्या मुसलमान हिन्दू अनाथों और नादान विधवाओं को फुसला कर मुसलमान बनावेंगे तो क्या इसलाम की नैया पार लग जायगी?

× × ×

मेरी मन्दमति में तो इस प्रकार के धर्मान्तर करने वाले दूसरे समाज के मलिन, पतित या दूषित अंश को अपने समाज में दाखिल करते हैं।

× × ×

वह मनुष्य कमज़ोर है जिसे इस बात का ख़याल बना रहता है कि लोग मुझसे फ़ायदा उठाते हैं। फ़ायदा उठाने वाले की अपात्रता को जानते हुए भी जो अपना फ़ायदा होने देता है, वह वीर है।

× × ×

वीर पुरुष बुरे आदमी की भी भलाई को देख लेता है

और उस भलाई में उसका साथ देता है । ऐसी सहायता सावधानी का अभाव नहीं, अपने बल और आत्म-विश्वास का प्रभाव सूचित करती है ।

× × ×

गङ्गा इसीलिए महान् है कि वह मैलों का मैल छुड़ाती है । जो पतितों का, बुराई से लिप्त जनों का तिरस्कार नहीं करता, बल्कि उनकी बुराई को धोने की उदारता दिखाता है वह गङ्गा से कम महान् नहीं है ।

× × ×

(यदि मैं अपने आराध्य देव, गुरु और माता-पिता की कड़ी से कड़ी आलोचना को स्थिर और शान्त भाव से नहीं सुन सकता तो मैं सार्वजनिक काम करने के योग्य नहीं ।)

× × ×

आराध्य देव, गुरु और माता-पिता की आलोचना सुन लेना आसान है, अपनी और अपनी पत्नी की आलोचना अथवा निन्दा को सुनकर उससे नसीहत लेने वाले पुरुष अवश्य अपनी उन्नति करते हैं ।

× × ×

(सहिष्णुता का ही दूसरा नाम है शान्तिमय प्रतीकार । सहिष्णुता जबरदस्त प्रतिरोधक शक्ति है ।) उसका प्रत्यक्ष अनुभव उन्हीं लोगों को होता है, जिन्होंने अपनी सहन करने की शक्ति को बढ़ा लिया है ।

× × ×

मुझे गाली देने वाले ने यदि मेरे साथ मेरे प्रतिस्पर्धी को भी गालियाँ नहीं दीं, तो इसके लिए मेरा उसे कोसना क्या मेरी हीन वृत्ति का सूचक नहीं ? दूसरों को गालियाँ पड़ने पर खुश होना क्या सज्जनोचित है ?

× × ×

एक मित्र अक्सर पूछा करते हैं—क्यों जी, मैं यह काम करता हूँ, लोग यह तो नहीं कहेंगे कि बड़ा बन रहा है ? मैं जवाब दिया करता हूँ—अपने दिल को टटोल कर देखो । यदि बड़ा बनने का जरा भी भाव उसके अन्दर हो, तो इस काम को न करो । यदि वह सेवा-भाव से ओतप्रोत हो, तो निःशंक होकर अंगीकृत कार्य की सिद्धि में जुट पड़ो ।

× × ×

सेवा का रास्ता जुदा है, पेट भरने का रास्ता जुदा है ।

जिसने सेवा का रहस्य समझ लिया है उसे पेट भरने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती।

× × ×

जब मनुष्य को अपनी महत्ता का ज्ञान और भान रहता है, तब समझना चाहिए कि अभी वह धार्मिकता और आध्यात्मिकता से कोसों दूर है, पर जब उसे अपनी अल्पता का ज्ञान और भान होने लगता है, तब जानना चाहिए कि आध्यात्मिकता के मार्ग की ओर उसकी प्रवृत्ति है।

× × ×

जबतक हमारा ध्यान अपने गुणों की ओर रहता है, तबतक हमारा अहंकार हमें साहस के रूप में दिखाई पड़ता है; पर जब हमें अपने दोषों और पापों का परिज्ञान होने लगता है, तब हम नम्रता का अनुभव करते हैं और वह हमें दैवी साहस और तेज प्रदान करती है।

× × ×

जो मनुष्य अत्याचारी के अत्याचार का विरोध करने में अपना सर्वस्व गँवा देता है, वही प्रेम के जुल्म का स्वागत करता है। कैसा आश्चर्य!

× × ×

आदर्शवादी पागल है, क्योंकि वह कष्ट सह कर भी, अपने को बरबाद करके भी आदर्श तक ,पहुँचने के लिए लालायित रहता है । व्यवहारवादी अक्लमन्द है, क्योंकि तक़लीफ़ का मौक़ा आते ही वह दुम दबा जाता है । वह राजनीतिज्ञ है ।

× × ×

व्यवहारवादी सफल है, क्योंकि जिस किसी तरह सफलता मिलती हो वह कर लेता है; आदर्शवादी असफल है, क्योंकि वह सन्मार्ग के ही द्वारा सफलता चाहता है और ऐसा करते हुए जो असफलता होती है उसका अभिमान रखता है । एक ऐसी अवस्था आती है, जब वह 'सफल' मनुष्य रोता है और 'असफल' उसके आँसू पोंछने की सेवा करता है ।

× × ×

पेट के सवाल से मनुष्यत्व का सवाल कहीं सच्चा है । पर पेट के लिए हम इतना उद्योग करते हैं, कितना पाप करते हैं ? जो मनुष्यत्व के लिए जरा भी प्रयत्न करते हैं, उन्हें मेरा सविनय प्रणाम है ।

× × ×

आत्म-विश्वास की कमी मनुष्यता की कमी है। परन्तु जिस आत्म-विश्वास में अपनी दुर्बलताओं और त्रुटियों का भान और मान नहीं है वह धोखा है और मनुष्य को उन्मत्त बना देता है।

× × ×

अपने मन में यह मान लेना कि मैं पवित्र और मजबूत हूँ, एक बात है; पर प्रसंग पड़ने पर जीवन और आचरण में उसका परिचय कर देना दूसरी बात है। विकट और विषम परिस्थितियों में अपनी पवित्रता और दृढ़ता को कायम रखनेवाले ही सच्चे वीर होते हैं।

× × ×

यह कैसी अनोखी, उलटी और बेढब बात है कि मनुष्य-समाज में सच्चे और भले आदमी को अपनी सचाई और भलमंसाहत के लिए अनेकों कष्ट उठाने पड़ते हैं और घोर यातनाओं के बाद ही मनुष्य उन्हें भला और सच्चा मानते हैं!

× × ×

जिस सत्य की रक्षा के लिए हमें औरों को दबाना और डराना पड़ता है, औरों के साथ जुल्म-ज्यादतियाँ करनी पड़ती है, उसकी सत्यता में मुझे पूरा सन्देह होता है।

× × ×

नाम और पद चाहने वालों की समझ में छोटी-सी बात क्यों नहीं आती कि सच्ची लगन के साथ सेवा करना नाम और पद की अचूक गारण्टी है ? सच्चा कार्यकर्त्ता नाम और पद को अपने कार्य का बाधक समझता है और उसकी इच्छा के ज़हर को वह निकालने का प्रयत्न करता है।

× × ×

यह क्या जादू है कि नाम और धन उससे दूर भागते हैं, जो उनके पीछे पागल हो जाता है; पर उसके पीछे पड़े रहते हैं, जो उनकी चाह को दिल से निकाल देता है ? क्या हम देशभक्त कार्यकर्त्ता इसका रहस्य समझेंगे ?

× × ×

जबतक हम ख़ुद अपने को पवित्र और मज़बूत समझते हैं, तबतक हम खान के हीरे हैं, पर हम जगत् के उपयोगी तभी हो सकते हैं, जब जगत् हमें हीरा समझने लगे।

× × ×

पहाड़ की किसी कन्दरा में छिप कर मुरझा जानेवाला गुलाब का पुष्प क्या उस गेंदे के फूल की कृतार्थता को पा सकता है, जिसने अपने को बलि-वीरों के पथ में फेंक दिया है ?

× × ×

जगत् के लिए तो यह ठीक है कि वह बबूल की उप-योगिता समझ ले, पर बबूल का इसमें कोई हित नहीं कि वह अपने कँटीलेपन पर नाज़ करे, या उसकी उपेक्षा करे।

सस्ता-साहित्य-मण्डल अजमेर के

प्रकाशन

३०—यथार्थ आद[illegible]वन (अप्राप्य) ॥-)

३१—जब अंग्रेज नहीं आये थे— ।)

३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=)

३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)

३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)

३६—स्वाधीनता के सिद्धांत ॥)

३७—महान् मातृत्व की ओर— ।॥=)

३८—शिवाजी की योग्यता ।=) (अप्राप्य)

३९—तरंगित हृदय (अप्राप्य) ॥)

४०—नरमेध ! १॥)

४१—दुखी दुनिया ॥)

४२—जि[illegible]श ॥)

३४—आ[illegible] (दोनोंखण्ड) अजिल्द [illegible]) सजिल्द २॥)

४४—जब अंग्रेज़ आये (ज़ब्त) १।=)

४५—जीवन-विकास अजिल्द १।) सजिल्द १॥)

४६—किसानों का बिगुल =) (ज़ब्त)

४७—फाँसी ! ॥)

४८—अनासक्तियोग =)

४९—स्वर्ण-विहान (ज़ब्त) (नाटिका) ।=)

५०—मराठों का उत्थान और पतन २॥)

५१—भाई के पत्र— अजिल्द १॥) सजिल्द २)

५२—स्व-गत— ।=)